काँगड़ा चित्रकला में लय तत्त्व का अध्ययन

-लाहाबाद विश्वविद्यालय को चित्र-ला विषय में
डी०फिल० की उपाधि हेतु प्रस्.त

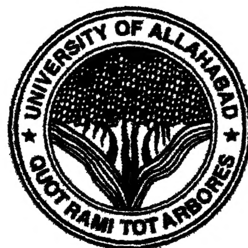
शोध प्रबन्ध

शोध निर्देशक

प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल
कलाभूषण
पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
चित्रकला, दृश्यकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणासी
एवं
विजिटिंग प्रोफेसर
दृश्यकला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधार्थी

ज्योत्स्ना विश्वकर्मा
दृश्यकला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय



-लाहाबाद वि-वविद्यालय, -लाहाबाद

व 2002

Phone 0532-606579

Kala Bhushan **PROF. RAM CHANDRA SHUKLA**

PROFESSOR & HEAD OF THE DEPARTMENT OF PAINTING, FACULTY OF VISUAL ART, BANARAS HINDU UNIVERSITY, VARANASI (Retd.), ARTIST, AUTHOR, ART CRITIC, ART EDUCATIONIST, FELLOW OF THE LALIT KALA AKADEMI U P, FOUNDER OF THE MOVEMENT OF MODERN ART, SAMIKSHAVAD, MEMBER OF THE NATIONAL LALIT KALA AKADEMI, HINDI SAMITI, EX. VISITING PROFESSOR, DEPARTMENT OF VISUAL ART, UNIVERSITY OF ALLAHABAD, CHAIRMAN, RACHNA ART SOCIETY, PATRON, LALIT KALA SANGEET VIKAS PARISHAD.

17,New Bairahana
Allahabad-211003 (U.P.)INDIA

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि *श्रीमती ज्योत्स्ना विश्वकर्मा* ने मेरे निर्देशन मे डी०फिल० (चित्रकला) की उपाधि हेतु **"कॉगडा चित्रकला में लय तत्त्व का अध्ययन"** विषय पर शोध कार्य किया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्णतया मौलिक एवं प्रामाणिक है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के नियमानुसार उपस्थिति आदि नियमों का पूर्णतया पालन किया गया है।

26.12.2002

दिनांक–6-12-02

(रामचन्द्र शुक्ल)
निर्देशक

विषय-सूची

काँगड़ा चित्रकला में लय तत्त्व का अध्ययन

आभार

इस विषय पर शोध कार्य करने की प्रेरणा के लिए सर्वप्रथम मै निर्देशक प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल जी की ऋणी हूँ जिन्होने इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला और मुझे कार्य करने की प्रेरणा दी।

मै अपने पिता के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मेरा मार्ग प्रशस्त कर उत्साह बढाया है।

दृश्यकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष, डॉ० आर०के० विश्वकर्मा जी के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ। जिनके सहयोग से मै यह शोध कार्य सम्पन्न कर रही हूँ। उनके आर्शीवाद एव शुभकामनाओ से मुझे प्रोत्साहन मिला, मैं पुन: उनको धन्यवाद देती हूँ। दृश्य कला विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक डॉ० श्याम बिहारी अग्रवाल व डॉ० अजय जैतली की आभारी हूँ जिन्होने शोध कार्य करने की योजना तैयार करने में अपनी सहमति एव स्वीकृति प्रदान की है।

शोधार्थी
Jyotsana Vishwakarma
(ज्योत्स्ना [redacted])

शोध का उद्देश्य

एम०ए० (चित्रकला) की शिक्षा ग्रहण करते समय से ही मेरी अभिरूचि लघुचित्र कला के प्रति विशेष रूप से रही है। अन्य चित्र शैलियों की तुलना में यह कॉगडा चित्रकला मुझे विशेष रूप से अपनी ओर आकृष्ट करती रही है। कॉगडा का वातावरण शान्त, लयात्मक, मनोरम और संगीतमय था जिससे मै बहुत प्रभावित हुयी। तभी से मेरे मन मे इस विषय पर शोध कार्य करने की इच्छा जागृत हुई। कॉगडा चित्रकला का अध्ययन करते समय मुझे उसमे लय तत्त्व समग्र रूप से दिखाई दिया जैसे मानवाकृतियॉ, रंगों, एव वातावरण मे। अपने शोध के सम्बन्ध में मैं जब हिमाचल प्रदेश के कॉंगडा जिले में पहुॅची तो वहॉ पर एक ज्वालामुखी देवी का पवित्र तीर्थ स्थान दिखाई दिया। वहॉ की प्राकृतिक छटा को देखकर ऐसा लगा जैसे सम्पूर्ण कॉगडा प्रदेश लयकारी मे आबद्ध है। लय सभी कलाओ का आधार रहा है लेकिन कॉंगडा के चित्रो में भावमय, लयात्मक एव ग्येतापूर्ण कलात्मकता सर्वोत्तकृष्ट हैं। कॉगडा चित्रकला में उभरा नारी सौन्दर्य रीति कालीन काव्य पर आधारित है। राग–रागनियों, नायक–नायिकाओं एवं श्रृंगारिक रूप में अंकित हुई प्रकृति के उन्मुक्त रूपों के साथ युवतियों को बड़े ही मौलिक रूपों में चित्रित किया गया है। नारियों के अंकन में चित्रकार का ध्यान नख–शिख और अंग–प्रत्यंग पर बराबर बना रहा है। उसमें चमकीले रंग और बारीक लयात्मक रेखाओं के सामंजस्य से उभरती आकृति सौन्दर्य की निर्मल प्रतिमा है। इन सुकुमार आकृतियों में स्त्री की अपार सुषमा है। शरीर की लावण्य प्रभा है और मुख एक विशिष्ट कांति से दीप्तिमान है। इन चित्रों को देखकर चित्रकारों की सौन्दर्य दृष्टि पर आश्चर्य होता है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य लय तत्त्व का निरीक्षण है इसलिये लय तत्त्व के सम्बन्ध में विद्वानो के विचारों पर ध्यान देना आवश्यक लगता हैं।

एडवर्ड मैकडोवेल ने लय के सम्बन्ध में कहा है कि "लय एक विचार को अंकित करता है, लय में संकल्प एवं उद्देश्य है। लय के पीछे उसका मुख्य मार्ग विचार और

शक्ति है, यह अभिनय है जो काल के आन्तरिक उत्तराधिकार के पात्र को अभिनित अथवा प्रदर्शित करता है।[1] लय का सामान्य अर्थ है लीन होना, घुल मिल जाना अर्थात् सयोग, एक रूपता अथवा मिलन। जब हमारा मन किसी वस्तु अथवा विचार मे लीन हो जाता है, तो हम कह सकते है कि वह लय की स्थिति में है। बाह्य रूप से किसी क्रिया और आन्तरिक रूप से किसी भाव के साथ तादात्म्य कर लेना ही लय है। जैसा भाव होता है उसी के अनुरूप शारीरिक चेष्टायें होती है। ये चेष्टायें गति और वाणी मे अपना स्वरूप व्यक्त करती हैं। इसी से कलाओ में लय की सृष्टि संभव होती है। इसी को देखकर दर्शक भी लय का अनुभव करता है। इस प्रकार मानव मे उत्पन्न हुई लय कलात्मक माध्यम के सहारे पुनः मानव तक पहुँच जाती है।'[2]

लय (Rhythm) की व्युत्पत्ति प्राचीन ग्रीक शब्द रहीन (Rhein) से हुई है, जिसका अर्थ,[3] "प्रवाह" अंग्रेजी "लय" के लिए रिद्‌म (Rhythm) शब्द प्रयुक्त होता है। पाश्चात्य परम्परा मे "लय" का अर्थ है समान अथवा उन्ही अवयवों की पुनरावृत्ति मे उत्पन्न निरन्तरता जो इसके गति प्रवाह और यति विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से उत्पन्न होती है। लय का स्वरूप तत्वतः एक साथ गत्यात्मक एवं आवृत्तिमूलक होता है और इसकी व्याप्ति दिक् और काल दोनों में है। संगीत कला में लय काल सापेक्ष रहती है और चित्रकला मे दिक् सापेक्ष। संगीत में लय के 3 भेद है। द्रुत, मध्यम तथा विलम्बित। यह गति के भी भेद हो सकते हैं। गति के आवर्त्तन में लय निहित रहती है और आवर्तन के अनेक रूप हो सकते हैं। स्थूल आवृत्ति के अन्तर्गत सूक्ष्म आवर्तन और सूक्ष्मतर प्रत्यावर्तनों की स्थिति रह सकती है।

आचार्य रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लय की परिभाषा करते हुये कहा है कि यह एक संगठित, गतिशील शक्ति है, जो महाकाली के क्रीड़ित लीला भाव को उत्पन्न, सन्तुलित और प्रेरित करती है, महाकाली एक ऐसी शक्ति है जो इस बदलती वास्तविकता को

---

[1] Rhythm denotes a thought and there is will as well as purpose behind rhythm and vital part is intention and power it is an act or play the role of eternal succession of time Macdwal (Edward).

[2] Encyclopedia of the Arts : Rhythm.

[3] हिन्दी साहित्य कोश–लय।

उत्पन्न, प्रेषित और विनाशित करती है।[1]

दृश्य कलाओं (Visual Arts) में लय का अर्थ रेखाओ, रूपों अथवा रंगों द्वारा व्यवस्थित किसी ऐसे सरल एवं सुसम्बद्ध आवृत्तिमय तथा सगीतमय पथ से है जिसके सहारे दृष्टि क्रमशः अग्रसर होती है।[2] यह गति पुनरावृत्ति, क्रमिक आरोह–अवरोह, अविरल रेखा प्रवाह और विकरण की स्थितियों में लयात्मक हो सकती है।[2]

आचार्य लालमणि मिश्र ने अपने शोध ग्रंथ : "भारतीय संगीत वाद्य" में लय की परिभाषा करते हुये कहा है कि "नियमित गति ही लय है, जो प्रबल–अबल की भावना की जननी है। गति का यह बल–अबल अनजाने ही प्रकट होता है, मानो यह कानो की इच्छाओ की स्वाभाविक पूर्ति है।"[3]

डॉ० कुमार विमल ने दो क्रिया के बीच पडने वाले अंतराल को लय कहा है। इस लय से ताल और गीत को गति मिलती है।[4]

लय ब्रह्मस्वरूप है 'लय अनादि है, अनन्त है, असीम है। यह प्रत्येक जीव पदार्थ में स्वभावतः विद्यमान है। यह गोचर नहीं है अगोचर है"। निराकार है और केवल अनुभूति गम्य है इसकी अनुभूति से हमें आनन्द की प्राप्ति होती है, अतएव लय तो साक्षात ब्रम्ह स्वरूप है और यह पूरी सृष्टि मे व्याप्त है।

प्रोफेसर राम चन्द्र शुक्ल जी का कथन है– लय पूरे ब्रह्माण्ड में है। जैसे उषा की लालिमा सम्पूर्ण लयात्मक के साथ दिखाई देती है। लय प्रकृति के प्रत्येक अवयव में विद्यमान रहती है। लय से ही सारे ब्रह्माण्ड का निरूपण हुआ है। लय जब नहीं होता तब प्रलय होता है।

व्यक्ति के शरीर में से अगर एक अंग काट दिया जाये तो उसकी लय विनष्ट हो जाती है। जैसे कूडा एक जगह फेंक दिया जाय तो वह लयात्मक नहीं दिखेगा। अगर उसे बहती नदी के पानी में छोड़ दिया जाय तो वह लयात्मक रूप ग्रहण कर लेगा।

---

[1] The religion of an artist By R N. Tagore (It is the movement generated and regulated by).
[2] H and Goldstein : Art in every day life pp. 129
[3] भारतीय सगीत वाद्य– डॉ० लालमणि मिश्र पृ० 1.
[4] डॉ० कुमार विमल – कला विवेचल – पृ० 111

लय केवल रखाओ तथा रूपो के द्वारा ही उत्पन्न नही होती, रंगो से भी उत्पन्न की जा सकती है। चटकीले एव धुँधले रगो के व्यवस्थित प्रयोग से कलाकार हमारी दृष्टि को इच्छित दिशा मे चला सकता है। सभी स्थानो पर भरे गये अत्यन्त चमकीले रग एक साथ दमक कर 'मोजार्त संगीत' के सदृश लयात्मक प्रभाव" उत्पन्न करते है।[1]

प्लेटो ने कहा था कि कला सत्य की अनुकृति है। उसका भाव यह था कि सत्य ईश्वर है, प्रकृति उसकी अनुकृति है और इसी प्रकृति की नकल कला है। वास्तव में मानव जीवन को उसके स्रष्टा ने इतना सीमित रखा है कि वह जो कुछ सोचा अथवा कल्पना करने की चेष्टा करता है, उसकी परिधि इस विश्व से आगे नही बढ पाती। मानव की विचित्रतम् कल्पनाएँ भी इसी संसार में देखी सुनी वस्तुओ का रूपान्तर मात्र होती है। यह प्रकृति अनन्त रहस्यों से परिपूर्ण है। क्या कलाकार और क्या दार्शनिक सभी इसके रहस्यो को समझने की चेष्टा करते और इससे प्रेरणा लेते हैं। हमारे देवता, स्वर्ग और नरक की सृष्टि, हमारे आदर्श ब्रहाण्ड की उत्पत्ति और प्रलय के सिद्धान्त, जिनसे सहस्त्रों वर्ष तक कलाओं ने प्रेरणा प्राप्त की हैं; सब प्रकृति पर ही आधारित हैं। प्रकृति और कलाओं का बडा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।[2]

लय प्रकृति मे भी है और कला में भी। नक्षत्रो की गति ऋतुओं का परिवर्तन एवं आवागमन का चक्र प्राकृतिक लय के प्रतीक है। यह लय कालाधीन है किन्तु देशाधीन लय भी प्रकृति में अनुभूति की जा सकती है। उदाहणार्थ पर्वत श्रृंखला के शिखरों के आरोह अवरोह को देख कर लय का आभास हो सकता हैं पर्वत श्रृंग पहले ऊँचे हैं किन्तु हमारी दृष्टि क्रम से ऊॅचे नीचे स्थलों पर पहुॅचती है और इसी कारण हमे आरोह अवरोह का आभास होता है। कलाकार अपने–अपने माध्यम के अनुसार इसी लय के विभिन्न रूपों का प्रयोग करते हैं। लयहीन कलाकृति दर्शक को प्रभावित करने में असमर्थ रहती है। कविता की लय कथानक के विकास के साथ–साथ स्वभाविक रूप में चलती है किन्तु चित्र की लय

---

1 Hajek: Miniatures from the East, P. 61.

2 A K Holdar Our Heritagein in Art, P. loy

के साथ दर्शक को बाँधना कठिन होता है। चित्र को दर्शक चाहे जहाँ से देखना आरम्भ कर सकता है, अत· चित्र की लय भौतिक सत्य न होकर लाक्षणिक रूप में ही समझी जा सकती है। काव्य की लय कथा वस्तु की लाक्षणिक रूप मे ही समझी जा सकती है। काव्य की लय कथा वस्तु की चरमसीमा पर पहुँच कर ही अवरोह करती है, चित्र मे आरम्भ से ही लय के आरोह–अवरोह का आकर्षण दर्शक को प्रभावित करता है।[1]

किन्तु चित्र तथा कविता की लय के इस भेद को अनावश्यक महत्व नही देना चाहिए। दोनों की लय में जो समान तत्व हैं वे भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। वास्तव मे लय किसी कृति का आस्वादन एक कालाधीन क्रिया है क्योकि इसमें कुछ समय लगता है। एक ही बार में न किसी कविता का पूर्ण भाव समझ में आता है, न चित्र का। कलाकृति के अंगो के विवेचन और उनके परस्पर सम्बन्ध के विचार की एक लम्बी अवधि के उपरान्त ही हृदय को कलात्मक अनुभूति होती है। कलाकृति को हृदयगम करने के हेतु उसका पुन· पुनः अनुशीलन आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि कविता में हम जिस प्रकार कथानक के साथ–साथ चलते हैं उसी प्रकार चित्रकार भी हमे अपने साथ–साथ चला सकता है। यह रेखाओं तथा रंगों का ऐसा प्रयोग कर सकता है कि जहा कलाकार चाहे वहीं दर्शक की दृष्टि पहले जाये और वहीं से अभीष्ट दिशा में आगे बढे। किसी भी चित्र में 'प्रवेश' करने के कुछ निश्चित स्थान होते हैं और रेखाओं की दिशा वहीं से हमे आगे बढती है। इस प्रकार लय कला का एक सामान्य लक्षण है।[2]

मैंने इस विषय को इसलिये चुना है कि 'लय' समग्र कलाओं की नींव है। कलाकारों, संगीतज्ञों और कलागुरूओं के विचार से 'लय' के अनुशीलन–अध्ययन और उसके महत्त्व से काँगड़ा चित्रकला अपनी गौरव गरिमा तथा लयात्मक अभिव्यक्ति के लिये भारतीय जनमानस में उपयुक्त एवं अपेक्षित स्थान रखती है। इसके आँचल में जो सस्कृति फूली–फली वह भारत की प्राचीनतम् एवं विशिष्ट संस्कृति है।

---

[1] Iheodore M. Green the Arts of Criticisin, P. 221.
[2] रामानन्द तिवारी · सत्य शिव सुन्दर, पृ० 193

इसी सस्कृति के विकास में 16वी सदी में एक समु ज्वल आभायुक्त रेखा दिखाई पडती है, जो तीन सौ वर्ष मे एक निश्चित परिपक्व रूप ग्रहण कर लेती है।

लयात्मक रेखा रूप का ही एक अग है। प्रकृति मे रेखा किसी वस्तु में नही दिखाई पडती। केवल छाया–प्रकाश के अंतर से पदार्थ, रूप, आकार तथा वर्ण से ही वस्तु दिखाई पडती है। रेखाओं से जो रूप बनता है, उसे हम वस्तु का सूक्ष्म रूप कह सकते है, किन्तु रेखाओं से बने रूप का प्रयोग कलाकृति में होता है और केवल उसी से रूप का भी आभास हो जाता है। पहले लिपि तथा रेखाओं से ही चित्र बने और यह सब से सरल और सुविधाजनक भी था। रेखाओ में लिपि प्रायः प्रत्येक देश में महत्वपूर्ण होती आई है। कॉगडा चित्रकला में रेखाओ में जो बहाव मिलता है, वैसा किसी अन्य शैलियो में देखने को नहीं मिलता है।

कॉगडा चित्रकला मे सयोजन तथा रंग विधान का महत्व सर्वाधिक दिखाई पडता है जिससे चित्रकार अपने भावों की अभिव्यक्ति रंगो व रेखाओं से करने में समर्थ होता है। चित्रों मे रगों का प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण है। रंगों से जो प्रभाव चित्र में लाया जा सकता है, वह रेखाओ की क्षमता से कम नहीं है, अर्थात् रंग का महत्व चित्रकला मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसी प्रकार रेखा का भी चित्रकला में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति में रेखा नही दिखाई पडती, केवल रंग तथा प्रकाश और छाया से ही रूप बना हुआ दिखाई देता है, परन्तु सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में रेखा छिपी हुई है।

कॉगड़ा चित्रकला में लय तथा गति महत्वपूर्ण है। पर्वतीय प्रदेश प्रकृति सौन्दर्य की खान है। ऊँची–ऊँची हिमाच्छादित विशाल भुजाओं की भांति फैले हुए पर्वत, हरी–भरी पहाडियॉं, कल–कल करते हुये झरने और बलखाती हुई नदियाँ, ऊँचे–ऊँचे लहराते वृक्ष तथा कोमल लताएं, सूर्य की सुनहरी रंग–बिरंगी किरणों से ज्योति हो उठी हैं। सारा हिमाचल प्रदेश लहराता हुआ देखकर प्रत्येक व्यक्ति भाव विभोर होकर नाच उठता है और जीवन लयमय हो जाता है। व्यक्ति के शरीर की गठन से कहीं अधिक लुभावना वहाँ का वातावरण तथा छन्दमय जीवन है।

कॉगडा चित्रकला मे शारीरिक गठन गति तथा लय के समक्ष ने ठहर सकी, पहाडी रेखावली गति की ओर झुक गई, और यह गुण उसे अपने प्राकृतिक जीवन से प्राप्त किया। कॉगडा शैली की रेखाओ में लय और छद गति जो महत्वपूर्ण दिखाई देती है ऐसा किसी और चित्रशैली मे नही दिखाई देती है।

कॉगडा के चित्रों में वस्त्रों का फहरान, लहराते हुए दुपट्टों की रेखाओं में, शरीर से ढॅकने वाले वस्त्रो में उनके चुन्नट आदि को लयात्मक ढंग से दिखाया गया है। रेखायें वस्त्रो को अकित करने के लिये नहीं बनाई गई हैं बल्कि भाव तथा गति के लिए महत्वपूर्ण है। चित्रो मे पात्रो के लंहगे, दुपट्टे, मोतियों की मालाएं, आभूषण, केवल शरीर के अंग नहीं है, बल्कि सुन्दर रेखाओं के समूह है, जो मन को आनन्दित कर देती है।

कॉगडा शैली के चित्रों में अधिकतर एक चश्म आकृतियॉ चित्रित हुई है, विशेषकर स्त्रियों के चित्रो में, ऑख, नाक, ओठ, ग्रीवा, मस्तक, केश इत्यादि का चित्रण बहुत ही मधुरता से किया गया है। प्रधानता घूँघट के अधखुले पटों को तो बहुत ही महत्वपूर्ण चित्रण है और यह घूंघट के पट भावभंगिमा में चार चॉद लगा देते हैं। पनघट जाते हुए, गोपियों का दूध बेचने जाते हुये, अधखुले नेत्रो से नीचे देखते हुए, कनखियों से झॉकते हुए, होंठ के कोरों से मुस्कराते हुए हिरणी तथा मोरनी की भांति तृषित नेत्रों से ताकते हुए घर का काम–काज करते हुये, इन चित्रों को देखकर मन खुशी से नाच उठता है।

ऐसा चित्रण अन्य शैलियो में नहीं दिखाई देता है इसलिये मैने 'कॉगड़ा चित्रकला में लय तत्व का अध्ययन' को अपना शोध का विषय बनाया है।

प्रस्तावना

कॉगडा चित्रकला अपनी गौरव गरिमा के लिये भारतीय जन मानस उपयुक्त एव अपेक्षित स्थान रखती है। इसके ऑचल मे जो सस्कृति फूली–फली वह भारत की प्राचीनतम् एव विशिष्ट है। इसी संस्कृति के विकास मे १६वी सदी मे एक समुउज्वल आभायुक्त रेखा दिखाई पडती है, जो तीन सौ वर्ष मे एक निश्चित परिपक्व रूप ग्रहण कर लेती है। सस्कृति की यह रेखा कॉगड़ा चित्रकला एक सुखद अनुभूति के रूप मे जन सामान्य को अपनी ओर आकर्षित करती है। ऐसा रग रूप और रेखाओ का सम्मिलन अन्यत्र देखने को नही मिलता है। आचार्य आनन्द कुमार स्वामी एव एम० एस० रधावा आदि अनेक विद्वानो ने इसकी भूरि–भूरि सराहना की है। कॉगडा चित्रकला सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का एक ज्वलन्त उदाहरण है। कॉगडा चित्रकला के विकास मे दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं संस्कृति एव धर्म है। काव्य एव संगीत कॉगडा कला की अपूर्व प्रेरणा है। कॉगडा चित्रकला के तीन प्रमुख केन्द्र है (1) गुलेर (2) नूरपुर (3) टीरासुजानपुर। कॉगडा चित्रकला को समझने बूझने के लिए इसकी सस्कृति का परिचय आवश्यक है।

पहाडी कला की यह अन्यतम् उपलब्धि 'कॉगडा' के शासक महाराजा संसार चन्द (1775-1823) के राज्यकाल की देन है। महाराजा संसार चन्द के समय में भागवत पुराण, गीत गोविंद, बिहारी सतसई, रसिक प्रिया, और कवि प्रिया तथा नलदमयती की प्रणयकथा चित्रित हुई। रामायण, महाभारत की कॉगडा कलम के चित्रकारो ने चित्रित किया है। प्रेम का ऐसा भावमय लयात्मक, गेयतापूर्ण तथा कलात्मक चित्रण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

बारहवी से सोलहवी शती तक काँगड़ा शैली की भाव भूमि वैष्णवमत से सिचित है और जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास आदि की कृतियों से प्रभावित है।

कॉगड़ा कलम का उदय कैसे हुआ इस सम्बन्ध में अनेक मत हैं। कुछ विद्वान

मानते है कि मुगल साम्राज्य मे जब चितेरे आश्रय खो बैठे तो वे पजाब की पहाडी रियासतो की ओर निकल आए। राज्याश्रय सहजता से प्राप्त होने के कारण कलाकारो को अपनी कला निखारने का अवसर मिलता रहा। 1739 मे नादिरशाह के आक्रमण से विवश होकर कलाकार पहाडी रियासतो की ओर आए। कॉगडा कलम के विकास मे हरिपुर–गुलेर के शासक गोवर्धन चन्द (1744-73) का नाम प्रमुखता से लिया आता है। कॉगडा कलम से सम्बन्धित दूसरा प्रमुख कला केन्द्र नूरपूर है। कांगडा कलम का तीसरा महत्वपूर्ण केन्द्र टीरासुजानपुर है। राजासंसार चन्द ने इस कला को अपना पूर्ण सहयोग देकर सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाया। राजा संसार चन्द का कला प्रेमी होना पहाडी चित्रकला के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी।

कॉगडा कलम के चित्रो को विशिष्टता प्रदान करने मे वहॉ का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। कॉगडा चित्रकला मे संगीत तथा काव्य का प्रभाव विशिष्टतम है। इसके चित्रण मे राग–रागिनियो को उनके अंग–प्रत्यंग और वातावरण के साथ सुन्दर ढग से रूपायित किया गया है। रागमाला–चित्रण राजस्थानी कला में भी देखने को मिलता है लेकिन जिस सजीवता से कांगडा कलम में ऐसे चित्र उभरे है वे अनुपम हैं।

कॉगडा चित्रकला मे रेखाओ का प्रवाह, रंगो का आमोदन, लयात्मकता, सतुलन, आकृति अकन, वास्तु और प्रकृति का चित्रण अनोखा है और उसकी अपनी विशिष्टता है। चित्र अपनी सम्पूर्णता मे मन को खींचता है, उसे रस विभोर कर देता है। कॉगडा कलम में लयात्मक रेखाएं तथा रमणीय रंगों के कोमल संयोजन से उसके लघु चित्रो को नयन सभ्यता का गुण मिलता है। आकृतियो के आलेखन तथा प्रकृति के रूपायन मे रगों की महानता, कोमलवर्णकारिता विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करती है।

पहाडी कला ने कॉगडा कलम के रूप में अपनी सबसे सुन्दर कलात्मक कृतियॉ भेंट की हैं। इसमें धरातलीय संयोजन, मानवाकृतियों की गतिशीलता तथा

रगो का स्पदन एव वातावरणीय प्रभाव सब मिलकर एक ऐसी लयात्मक अनुभूति व्यक्त करते है कि दर्शक भाव–विभोर हो जाता है और कॉगडा शैली की सबसे बडी विशेषता उसकी लयात्मकता अपने आप प्रकट होने लगती है।

इस शोध प्रबध का मुख्य उद्देश्य कॉगडा चित्रकला की लयात्मकता को निखरता, परखना और मूल्याकन करना ही है।

शोध–प्रबन्ध के तथ्यो को मैने पॉच अध्यायो मे प्रस्तुत किया है–

विषय की प्रस्तुति मे लय के तत्त्वो को स्पष्ट किया गया है।

प्रथम अध्याय मे लय के मूल तत्त्व, रूप रेखा, अन्तराल, गठन सन्तुलन, ताल, चित्र मे लय तत्त्व का समुचित विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में धार्मिक, प्राकृतिक, भौगोलिक वातावरण और वहॉ का सामान्य जन जीवन का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

कॉगडा चित्रकला मे धार्मिक चित्र विशेष रूप से चित्रित है, जयदेव लिखित 'गीत–गोविन्द', बिहारी लिखित 'बिहारी सतसई' भागत पुराण, रामायण, महाभारत, बारहमासा और रागमाला। कृष्ण–लीला और नायक–नायिका सम्बन्धी चित्र विशेष रूप से अपना महत्व है। लेकिन राधा और कृष्ण को लक्ष्य बनाकर जीवन की इतनी बहुविध लीलाओं का वर्णन हुआ है कि लगता है जीवन का शायद ही कोई पक्ष छूटा हो।

प्राकृतिक वातावरण के दृश्यों के संयोजन से कॉगडा के चित्रकारों ने अद्‌भुत चित्रावली प्रस्तुत की है। विविध ऋतुओं (बारहमासा) के अंकन मे फलों से लदे वृक्षों, झाड़ियों आदि से शस्य–श्यामतल मैदान अकित किये गये है। सरोवर में कमलपुष्प तथा कुमुद पुष्पों से युक्त बनाया गया है। जल को लहरदार, रेखाओं के द्वारा दिखाया गया है। पशु–पक्षियों का बडा भावपूर्ण चित्रण कॉगडा के चित्रों में दिखाई दिया है। वर्षा में बगुला, विरह मे सारस या मोर आदि को मानव भावना के अनुकूल चित्रित किया है। कृष्ण–के संग–गायों का सजीव चित्रण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

"यहॉ के लोग सीधे, परिश्रमी, मित्व्ययी और ईमानदार है– व्यवहार मे खरे, मिलनसार और हमेशा ही विश्वासपात्र है– पूरे स्वामी भक्त, आतिथ्य–परायण और सहनशील है– इन्हे विश्वास और दायित्व के स्थान पर नि सन्देह रखा जा सकता है– सिक्ख राज्य में इन्हे विश्वास का ऊँचे से ऊँचा स्थान प्राप्त था इनके वार्तालाप के ढग मे यद्यपि हिन्दुस्तानियों की सी दिखावे की नफासत नही, तथापि उसमें शिष्टता, शालीनता और सहजता पूरी तरह से पायी जाती है। सच्चाई पर दृढ रहना यहॉ के व्यवहार–शील का विशेष गुण है। जिलाधीश के नाते पॉच वर्ष की मेरी अवधि मे मुझे एक भी घटना की याद नहीं जब किसी ने जान–बूझकर झूठी गवाही दे दी हो। वे वचन के धनी है–लेन–देन–व्यवहार मे लिखित इकरारनामा कभी–कभार ही करते है– जबानी वचन इतना ही पक्का समझा जाता है जितना लिखित बाड चोरी यहॉ नाम मात्र भी नहीं, यदि कही है भी तो छोटी जातियो में और वह भी अत्यन्त मामूली वस्तुओ की फौजी सिपाही के रूप मे छावनियो मे इनका व्यवहार और रहन–सहन संयमित और अनुशासन बद्ध है। वहॉ की असुविधाओ को धैर्य से चुपचाप सहने और आज्ञाकारिता की सदा सराहनीय रिर्पोटे मिली है– यह षड्यंत्रकारी और आन्दोलन प्रिय नही है– इन गुणों के विरूद्ध 'दुर्गण' के नाम पर कुछ भी बताने को नहीं है।

'बुराई' के नाम पर इतना ही कहा जा सकता है कि ये लोग बहुत ही अन्धविश्वासी है– छुआछूत और जाति–पॉति की कुप्रथाओं से ग्रस्त है जादू–टोने, भूत–प्रेत, शकुन–अपशकुन की मान्यता है– बीमारी, आपत्ति, यहॉ तक कि फसल सम्बन्धी असफलता को भी किसी देवी देवता या पीर–फकीर का प्रकोप मानते हैं। अपनी इज्जत और आबरू की रक्षा के लिए बडे–से–बड़े बलिदान कर देते है– अपमान या अशिष्टता का एक शब्द या अन्यायपूर्ण व्यवहार उनके सदा के असहयोग या वैर के लिए पर्याप्त हैं।"

तृतीय अध्याय में विकसित करने वाले कलाकारों का उल्लेख किया गया है।

कॉगडा चित्रशैली के प्रमुख कलाकार एव प्रशयदाता महाराजा ससार चन्द थे उनका कला प्रेम ख्याति प्राप्त कर चुका था। कॉगडा शैली को विकसित करने वाले कलाकारो के नाम—धर्म चन्द, माणिक्य चन्द, जय चन्द बिधिचन्द, हरिचन्द, फतू, कुशन लाल या कुशला, बसिया, पुरखू इसके अतिरिक्त कॉगडा के अन्य चित्रकारो के प्रमाण नहीं मिलते क्योकि अधिकाश चित्रकार कहीं चित्र के पीछे नाम लिखते थे या नाम लिखते भी नही थे। महाराजा ससाद चन्द के समय जो चित्रकार कार्य करते थे उनके नामो का पता चला है जिनमे खुशाला और मानकू का नाम उल्लेखनीय है।

चतुर्थ अध्याय मे अन्तर तथा विभिन्नता और विशेषता के सन्दर्भ मे विचार—विनियम करके नये मानदण्डो को स्थापित किया गया है।

पचम अध्याय में लय का बोध विशेष रूप से दिखाया गया है रेखाओं द्वारा, आकारो, दृष्टियो, वस्त्रो, श्रृंगार को एक लयात्मक रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

मैने पूर्ण विश्वास एव निष्ठा के साथ यह शोधकार्य श्रम, लगन, रूचि और पूरे उत्साह से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मुझे आशा है सह्रदय जन इसे पसन्द करेगे।

अध्याय - 1

- कला के मूल तत्त्व-रूप एवं अन्तराल, रेखा, [illegible] (गठन)।
- कला के सूक्ष्म तत्त्व-लय, सन्तुलन, ताल।
- चित्र में लय तत्त्व का [illegible]।

कला के मूल तत्त्व

आधुनिक कला विचार के अनुसार प्रत्येक कलाकृति मे तीन तत्त्व होते है।

1 वह पदार्थ जिससे किसी कला–वस्तु का कलेवर बनता है, जैसे मूर्ति मे प्रस्तर–खण्ड, चित्र मे रग, काव्य में भाषा आदि। इस तत्त्व को 'भोग' कहते हैं।

2 प्रत्येक कलाकृति मे अवयवो की आकृतिगत विशेषता होती है। समान 'भोग' से हम दो विभिन्न कलाकृतियो की रचना कर सकते है जैसे प्रस्तर खण्ड से हम गोवर्धनधारी की प्रतिमा भी गढ सकते है और शेषशायी विष्णु की भी। कलाकृति का वह दूसरा तत्त्व उसकी आकृति अथवा 'रूप' की विशेषता है।

3 भोग और रूप तत्त्व किसी कलाकृति के साध्य नहीं होते है वरन् उनके द्वारा किसी आन्तरिक अनुभूति अथवा विचार को व्यक्त किया जाता है।[1]

भोग

कलाकृति के सौन्दर्य का वास्तविक आधार भोग तत्व है जिसका आस्वादन मनुष्य अपनी स्वाभाविक सौन्दर्य चेतना द्वारा करता है। बुद्धि का विकास होने पर भोग के प्रति हमारी रूचि वैसी बनी रहती है। शिशु के हेतु किसी कलाकृति का आकृति सौन्दर्य अथवा अर्थगरिमा आकर्षण का कारण नही होती वरन् वह उसके रग, ध्वनि आदि से ही प्रधानतः प्रभावित होती है जो 'भोग' तत्त्व है।

भोग का सम्बन्ध हमारी ज्ञानेन्द्रियों से है। इनमें भी नेत्रो का स्थान सर्वप्रमुख है। इसी से सुन्दर वस्तु को देखने पर सबसे पहले हमें उसके रंग ही प्रभावित करते है। आधुनिक मनोविज्ञान ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि वस्तुओं के सौन्दर्य मे रंगो का महत्वपूर्ण स्थान है और प्रायः स्त्रियों को लाल रंग एवं पुरूषों को नीला रंग विशेष प्रिय होता है।

---

[1]. Matter, Form Content – T M Greene, The Arts of Criticism

रगो के अतिरिक्त मधुर ध्वनि, कोमल स्पर्श, गन्ध तथा रस भी आकर्षित करते है, जहॉ ये प्रत्यक्ष रूप में इन्द्रिय सवेध होकर आनन्द प्रदान करते है वहॉ इनकी कल्पना भी आह्लाद उत्पन्न करती है। काव्य मे भाषा अर्थात् ध्वनि रूपी भोग का प्रयोग होता है, किन्तु कविता या आनन्द शब्दो और छद योजना तक ही सीमित नही है। कविता के शब्दो के द्वारा वर्ण, स्पर्श, रस और गन्ध आदि की भी श्रोता को सजीव अनुभूति होती है। वस्तुत भोग ही वस्तु के सौन्दर्य का आधार है इसी से आधुनिक कलाकार अपनी कला कृति में 'भोग' तत्त्व को अधिक से अधिक प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करने को प्रत्यत्नशील होता है।

पाश्चात्य विद्वान् **विचेस्टर** ने कलाओ के मूल में चार तत्त्वो की प्रधानता मानी है।[1]

(1) भाव तत्त्व

(2) कल्पना तत्त्व

(3) बुद्धि तत्त्व

(4) शैली तत्त्व

भाव तत्त्व

जीवन की अनेक प्रकार की अनुभूतियों और भावो को ही कलाओ में व्यक्त किया जाता है। इन्ही को भाव तत्त्व कहा गया है। भारतीय आचार्यो ने भी रस के रूप मे भावो को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। पाश्चात्य विद्वान भावों मे तीव्रता लाने के हेतु निम्न बातें सहायक मानते है–

(क) औचित्य – भावों को आधार न्याययुक्त, तर्क–संगत तथा उचित होना चाहिए। सस्ती भावुकता अथवा समाज के लिए हानिकारक भावो को कलाओं मे स्थान नहीं मिलना चाहिये।

---

[1] C Caudvell Illusion and Reality, P 159 to 163

(ख) **विशदता या शक्तिमत्ता** –इसे कलात्मक भावो की प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अनिवार्य माना गया है।

(ग) **स्थिरता** – भावों मे शक्तिमत्ता के लिए यह अनिवार्य है कि वे तीव्र तथा स्थिर हो।

(घ) **विविधता** – इससे कृति मे आकर्षण एव रोचकता के गुण उत्पन्न होते है।

कल्पना तत्त्व

अग्रेजी मे 'इमेजिनेशन' का तात्पर्य है 'इमेजज' (बिम्ब) धारण करना। भारत के प्राचीन आचार्यो दिड्नाग और धर्नकीर्ति आदि ने इसी को मानस–प्रत्यक्ष कहा। इसका स्तर बुद्धि से पूर्व तथा निम्न माना गया है। जब–जब मन किसी पदार्थ (object or stimulus) की सत्यता–असत्यता का विचार न करके उसके आधार पर सवेदना ग्रहण करने लग जाता है तो उसे कल्पित संवेदना (Imaginary sensum) कहा जाता हैं। कल्पना के बल पर कलाकार अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म एव अमूर्त भावो को भी प्रत्यक्ष कर दिखाता है तथा साधारण से साधारण बात को भी प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत कर दिखाता है कल्पना की स्थिति समाधि मानी गई है, और शिथिल समाधि के विरुद्ध चेतावनी भी दी गई है।[1]

बुद्धि तत्त्व

बुद्धि तत्व मे विचार की प्रधानता होती हैं। इसके द्वारा कलाकार तर्क–वितर्क का आश्रय लेकर भावों एवं कल्पना का नियमन करता है और कलाकृति का लक्ष्य निर्धारित करता है।

शैली तत्त्व

उपर्युक्त तीनों तत्त्व कला के अतिरिक्त पक्ष से सम्बन्धित है। चौथा शैली

---

1. Art Makes its Demonds on the whone man its requres in an inteqgrated use of minds, body, emotion and will" Panl weiss, Nue Bntic Arts Page-9,

तत्व कला के बाह्य पक्ष को प्रस्तुत करता है। अन्य तत्त्व आत्मा है तो शैली तत्त्व शरीर है। कला के भौतिक माध्यम को प्रस्तुत करने की पद्धति ही शैली का निर्माण करती है। कला के अनुसार शैली तत्त्व बदलता रहता है, शेष तत्त्व समस्त कलाओ में एक समान रहते है। शैली मे कलाकार की रूचि, विषय–चयन, प्रस्तुत करने की पद्धति आदि का निर्धारण किया जाता है। एक प्रकार से शैली के द्वारा कलाकार का व्यक्तित्व प्रकट होता है।

चित्र के तत्त्व

चित्रकला रूप और रग की कला है। रूप का निर्माण रेखाओ की सहायता से होता है। रेखाये अनेक दिशाओ मे नियमित की जाती है। रूप की अनेक प्रकार की आकृति अथवा बनावट होती है और उनके आकार भी भिन्न होते है। इसी प्रकार रगो की रगते और बल कई प्रकार से हो सकते है। अत चित्र के तत्त्वो को निम्नाकित सात प्रकार का माना गया है[1]–

रेखाएँ एवं दिशा

प्रकृति मे हमे रेखा प्राप्त नही होती। मनुष्य ने कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे रेखा का विकास किया है। शिशु में भी रेखांकन की प्रवृत्ति होती है। रेखा कलाकृति का आधार है। रेखा की शक्ति का ज्ञान कलाकार के हेतु परमाश्यक है। यह वस्तु को बॉधने वाली केवल बाह्य सीमा रेखा (आउट लाइन) नही होती। इससे गति एवं स्थूलता दोनों प्रकट होते हैं। गति का अर्थ वस्तु या आकृति की क्रियाशीलता ही नही वरन् चित्र में रेखा का कलात्मक प्रवाह भी है।

रेखा मे कुछ न कुछ मोटाई अथवा चौडाई अवश्य रहती है। हल्की रेखा कोमलता, अस्पष्टता, सौन्दर्य तथा दूरी की द्योतक होती है। गहरी रेखा, स्पष्टता, सजीवता, निश्चय, कठोरता, शक्ति और सामीत्य प्रकट करती है। गोल रेखा से

---

[1]. Herbrst Read The Meaning of Art, P 49, (The elements of structure of art)

सौन्दर्य एव सौष्ठव झलकता है। तिरछी रेखाओं में शक्ति, दृढता एव गति रहती है। ऊपर जाने वाली रेखाये आशा और उत्साह का सचार करती है तथा नीचे जाने वाली रेखाये करूणा, दु ख एव निराशा आदि व्यक्त करती है। जटिल रेखाये देखने से उलझन तथा सरल रेखाओ से शान्ति होती है। कुशल चित्रकार रेखाओं का इस प्रकार प्रयोग करते है कि उनसे भावानुकूल छन्द बन जाता है।

आकृति

आकृतियाँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं जैसे लम्बी, चौडी तिरछी, गोल, चौकोर, त्रिकोण आदि। आकृति ऐसी होनी चाहिये जो देखने मे सुखद हो।

कलात्मक आकृतियाँ साधारण आकृतियो से कुछ भिन्न होती है। इनमे एक प्रकार की लय होती हैं पर इनके सम्बन्ध मे कोई निश्चित नियम नही बन सकते।

आकार

चित्रकला में इसका बहुत महत्व है। कोई आकृति कितनी बडी हो, अन्य आकृतियो से उसका क्या अनुपात हो– महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यूनानी, गोथिक, इस्लामी और गुप्त कालीन भारतीय कला इसी महत्ता का उद्घोष अपने प्रमाण के कारण ही देवत्व का प्रतीक बन गई है।

रंग तथा बल

रेखा से रूप को स्पष्टता और गति प्राप्त होती है। रंग इस सौन्दर्य में वृद्धि करके वस्तु सादृश्य एवं प्रतीकता की सृष्टि करते हैं। रंगों के तीन गुण माने गये है–रगत, बल और घनत्व।

रगो की रंगत के अनुसार उनके पीला, लाल, नीला आदि नाम रखे गये हैं। मुख्य तीन रंग है, पीला, लाल तथा नीला। रंगों का प्रभाव हमारे शरीर तथा मन पर पडता है। किसी रंग के प्रकाश अथवा छाया के रूप को ही बल कहते हैं। प्रकाश से रगों का हल्के बल तथा छाया से गहरे बल निर्मित होते हैं। रंगों की चमक या

मिलावट से घनत्व का ज्ञान होता है। अधिक घनत्व वाले रगो का प्रयोग चित्र मे समझ–बूझ कर थोडे स्थान में ही करना चाहिए।

धरातल

चित्रकला मे धरातल द्विविस्तारात्मक होता है। धरातल के द्वारा अग्रभूमि, पृष्ठभूमि एव वस्तु के स्थान आदि का बोध होता है। चिकने तथा खुरदरे धरातल का अलग–अलग प्रभाव होता है। धरातल का प्रभाव एक तो आधार फलक से उत्पन्न किया जा सकता हैं, दूसरे तूलिका के स्पर्शों द्वारा भी धरातल के विविध प्रभावो की सृष्टि की जा सकती है।[1]

पाश्चात्य कला-आलोचक हर्बर्ट रीड ने कला के पॉच तत्त्व माने हैं[2]–

(1) रेखा–प्रवाह

(2) रूप योजना

(3) विस्तार का वितरण

(4) छाया–प्रकाश

(5) रंग (Colour)

इनमें रेखा, आकृति तथा रंग में तीन तत्त्व वैसे ही है जैसे ऊपर विवेचित किये गये है। हर्बर्ट रीड का रिक्त स्थान का वितरण भी पूर्वोक्त आकार अथवा प्रमाण का रूपान्तर मात्र है। छाया–प्रकाश को रंगों का ही एक गुण समझाना चाहिए जिसे बल कह सकते है। कला के उपयुक्त तत्त्वों का सम्यक् प्रयोग जहॉ कृति की श्रेष्ठता का साधक होता है वहाँ इनका ज्ञान रसास्वादन का आधार भी बनता है।

कलाओं के जो भौतिक उत्पादन हैं उनमें कुछ संगति बिठायी जाती है। इस 'भोग' को व्यवस्था देना ही कला में 'रूप' कहलाता है। डॉ० हरद्वारीलाल का विचार

---

1. डॉ० गिरिराज अग्रवाल, कला–समीक्षा, अलीगढ, 1974, पृ०-32.
2. Herbert Read The Meaning of Arts, P. 49, (The elements of structure of art).

है कि "भोग्य–पदार्थ के विन्यास से 'रूप' का आविर्भाव होता है। भोग्य पदार्थ रूप के अवयव है। रूप से पृथक इनकी सत्ता है; किन्तु रूप स्वय न किसी अवयव मे रहता है और न उनके निरर्थक समूह मे। जिस प्रकार रगो तथा रेखाओ से चित्रगत रूप का निर्माण होता है उसी प्रकार ध्वनि से काव्य का, ध्वनि एव गीत अस्तित्व प्राप्त करता है। गन्ध, स्पर्श एव रस के भोग का विन्यास असम्भव है अत इन्हें दृश्य और श्रव्य रूपो के द्वारा केवल व्यजित किया जा सकता है। इस प्रकार दृष्टि तथा श्रवणेन्द्रिय से सम्बन्धित रूपो का ही प्रमुख महत्व है।"[1]

दृष्टिगत रूप के तीन भेद है :–

(1) प्राकृतिक अथवा सजीव

(2) आलकारिक एव

(3) ज्यामितीय अथवा सूक्ष्म।

मानव वनस्पतियो, पशु–पक्षियों आदि के शरीर मे हम जिस गतिशील रूप का अनुभव करते है वह प्रथम श्रेणी मे आता है। जब ये रूप अलंकृत होकर अपनी प्राकृतिक छटा को खो देते हैं तो आलंकारिक कहलाते है। ऐसे रूपो मे सजीवता के स्थान पर अलकृति एवं विचित्रता ही चमत्कृति का हेतु होती है। ज्यामितीय रूपों मे नियमो की कठोरता एव सूक्ष्मता रहती है।

'रूप' में प्रयुक्त भोग यदि स्वयं भी आकर्षण का कारण हो तो रूप में मधुरत्व उत्पन्न हो जाता हैं। रूप का दूसरा गुण लावण्य है। जब मोती की छाया के समान रूप मे तरंग की प्रतीति होती है, तो इसे लावण्य कहा जाता है शोभा, कान्ति, दीप्ति आदि रूप के अन्य गुण है।

अब तक हमने 'रूप' की सीमित व्याख्या की है। विस्तृत व्याख्या में भोग, प्रतिपाद्य, विषय सन्दर्भ आदि की व्यवस्था को भी रूप कहते हैं। यह किसी एक वस्तु

---

1. डॉ हरद्वारी लाल शर्मा: सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ सख्या —77

से सम्बन्धित नही है। इसके अन्य अर्थो मे काव्य रूप, छन्द, मात्रा, त्रासदी–कामदी, घटनाओ को प्रस्तुत करने की विधि, गद्य–पद्य आदि भी लिये जाते है। इन सबको कलाकार ऐसे विशेष 'रूप' मे प्रस्तुत करता है जिससे उसकी शैली का निर्माण होता है।

सुन्दर रूप के छः सिद्धान्त माने गए हैं[1] –

(1) अवयव संगठन अथवा विविधता में एकता

श्रेष्ठ कलाकृति का यह सार्वभौमिक गुण है। विविधता का लक्ष्य दर्शक की रूचि बढाना और एकता का लक्ष्य समस्त पक्षों की ओर ध्यान दिलाने की शक्ति बढाना है। विविधता न होने से कलाकृति अत्यन्त सरल प्रतीत होने लगती है। अत्यधिक विविधता से उलझन हो जाती है। दोनों ही परिस्थितियॉ रसानुभूति मे बाधक है। विविधता उत्पन्न करने के हेतु माध्यम की सम्पन्नता रूप में लयात्मकता, अर्थ की व्यजनात्मकता, सघर्ष, नवीनता तथा ताजगी का विधान किया जाना चाहिए। एकता बनाये रखने के हेतु माध्यम तथा कारीगरी की सूत्रता, लय की निरन्तरता, समता, परिचितता, परम्परा पालन, अर्थ की निरन्तरता, स्पष्टता, सरलता, निरर्थक तत्त्वो का बहिष्कार औचित्य आवश्यक है।

(2) वस्तु

कलाकृति की प्रतिपाद्य कथावस्तु आकर्षक एवं कल्याणप्रद होनी चाहिये।

(3) वस्तु-वैविध्य

मुख्य (आधिकारिक) कथावस्तु को सरस बनाये रखने के हेतु एव कथाक्रम में विविधता लाने की दृष्टि से प्रासगिक कथा वस्तु का भी समावेश होना चाहिए।

(4) सन्तुलन

कृति के अंगो की संगति एवं कृति के सभी अंगो को अनुविद्ध एवं समान

---

1. डिविद् एच० पार्कर, The Analysis of Art Chap. II yale university press, 1926 page-140

महत्वपूर्ण बनाये रखने से सन्तुलन उत्पन्न होता है। दृश्य कलाओ मे केन्द्र से चारो ओर समान भार का सयोजन सन्तुलन कहा जाता है।

(5) आनुगतिकता (Hierarchy)

सभी घटनाए प्रधान वस्तु का अनुगमन करने वाली होनी चाहिये। प्रधान वस्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण होनी चाहिये।

(6) विकास (Evolution)

कृति के रसास्वादन के आरम्भ से अन्त तक एक ही पद्धति पर कृति का विकास होना चाहिये। यह पद्धति समवेत विकास की है। कलाकृति का रोम–रोम एक ही दिशा, एक ही लक्ष्य की ओर इगित करने वाला होना चाहिये।

स्टीफेन पेपर ने सुन्दर रूप के दो महान् शत्रु माने है, एकरसता तथा उलझन। एकरसता को विविधता से एवं उलझन को एकता से समाप्त किया जा सकता है।[1]

चित्र विज्ञान के अनुसार एक रूप से अन्य रूप की विभिन्नता प्रदर्शित होने का ही नाम रूप है। और चित्र के गुणों मे यह कला के नाम से प्रसिद्ध है। वास्तव में अलंकार–रहित होकर भी जिस शक्ति के प्रभाव से अंग–प्रत्यंग भूषित दिखाई पडे ठीक उसी शक्ति का नाम रूप है।

"रूप दो प्रकार से देखा जाता है एक आँखों द्वारा दूसरा मस्तिक द्वारा। ऑखो द्वारा रूप की केवल यही पहचान हो सकती है कि जिस वस्तु को हम देख रहे है वह लम्बी है अथवा छोटी, चौरस है अथवा गोल, मोटी है अथवा पतली, सफेद है अथवा काली, इत्यादि। परन्तु रूप की वह छवि या माधुर्य जो उस वस्तु के भीतर विद्यमान है ऑखो द्वारा दिखाई नही दे सकती। उस माधुर्य को देखने वाले नेत्र अथवा शक्ति हमारे मस्तिष्क में ही होती है। उसी शक्ति द्वारा हम रूप के भेदों को

---

[1] जी०के० अग्रवाल, कला–समीक्षा, अलीगढ, 1970, पृष्ठ सख्या–26-27.

जान सकते है। केवल ऑखो द्वारा रूप की पहचान नही हो सकती। ऑखे वस्तु के वाह्य रूप को देखती है और मस्तिष्क भीतरी रूप को देखता है।[1]

रूप में गुण और दोष की पहचान करना हमारे मस्तिष्क ही का काम है। अब यहॉ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि गुण युक्त तथा दूषित रूप की पहचान किस प्रकार होती है। अतएवं स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक रूप में रूचि का होना आवश्यक है। रूचि प्रत्येक वस्तु मे होती है और प्रत्येक मस्तिष्क मे भी होती है। जिस समय हमारी ऑखे किसी वस्तु को देखती है और उस वस्तु की रूचि हमारे मस्तिष्क की रूचि से मिल जाती है तब ही हमको वह सुन्दर ज्ञात होती है अथवा नही।

एक वस्तु को दो मनुष्य देखते है एक को वही वस्तु सुन्दर ज्ञात होती है और दूसरे देखने वाले को कुरूप प्रतीत होती है।

भारतीय चित्र विद्या के आचार्यो का मत है कि इस रूप के प्रदर्शन के लिए साधारण रेखा वस्तुत रेखा नही है। रूप रेखा ही रूप को पुष्ट करती है। रूप रेखा जितनी ही विशुद्ध एव स्वाभाविक होगी चित्र उतना ही उत्कृष्ट एवं सुन्दर होगा।[2]

रूप में विभिन्नता, रूप का रहस्य–उद्घाटन। अर्थात् प्रत्येक आकृति मे ऐसी विभिन्नता एवं चारित्रिक विशेषता दर्शित होनी चाहिए, जिससे अमुक आकृति को पहचाना जा सके। जिस आकृति मे सत्य (सौन्दर्य) की अभिव्यक्ति हो उस गुण विशेष को 'रूप' के नाम से अभिहित करते हैं। सर्वप्रथम हमे नेत्रो द्वारा केवल रूप और रग का ही ज्ञान प्राप्त हो पाता है और नेत्रो से देखकर ही हम वस्तु के मूल आकार की कल्पना कर बैठते हैं जबकि वस्तु के आकार का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही सम्भव हो पाता है। ताजमहल के आकार का उदाहरण इस बात की पुष्टि करता है। मान लीजिए हम ताजमहल का आकार जानना चाहते हैं तो ताजमहल के केवल

---

1. सौन्दर्य (B)=व्यवस्था (O) x B = O/C)

2 डॉ० अवध उपाध्याय, चित्रकला, 1978, पृष्ठ 25

सामने से फोटोग्राफ ले लेने मात्र या चारो ओर से उसका फोटो ले ले तब भी आकार को नही समझ सकते है जब तक कि उसके अन्दर का चित्र भी न खीच ले। इस तरह सैकडो चित्र खीचने के बाद भी हम ताजमहल के आकार से अच्छी तरह परिचित नही हो पावेगे जब तक हम स्वय ताजमहल को चारो ओर से और भीतर भी जाकर अच्छी तरह न देख ले। यहीं कारण है कि चित्रकार वस्तु के आकार को प्रदर्शित करने मे पूरी शक्ति लगा देने के बावजूद असमर्थ सा रहता है। इसका प्रयोग 20वी शताब्दी के धनवादी चित्रकारों ने किया है और अब तो चलचित्रो द्वारा भी विदेशो में 'आकार' की दिखाने मे लिये ''थ्री डाइमेशनल सिनेमा'' दिखाये जा रहे है। फिर भी पूर्ण आकार की जानकारी नही हो पाती। ऐसी स्थिति मे चित्रकार यथार्थ चित्रण तक ही सीमित रह पाता है। और यह यथार्थ चित्रण वस्तुओ को सामने से देखकर चित्रण मात्र नहीं बल्कि उन वस्तुओ के पूर्ण आकार का निरीक्षण एव कल्पना के द्वारा एक बिम्ब ग्रहण करने और तत्पश्चात् उसी आधार पर चित्रण करने से है। अत· यथार्थ चित्रण में प्रकृति निरीक्षण एव कल्पना दोनों आधारों की आवश्यकता है।

यथा–ज्योति पश्यति रूपाणि रूपं चाबहुधा स्मृतम्।

हस्वो दीर्घस्तथा स्थूलश्च तुर श्रोडनुवृत्तवान्।।

शुक्ला· कृष्णस्तथा रक्तः पीतो नीलोडस्णस्तथा।

कठिनश्यिक्कण श्लक्ष्णः पिच्छिलो मृदृवारूपणः।।[1]

हस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुष्कोण और नानाकोण–जैसे त्रिकोण, षट्कोण, अष्ठकोणादि एवं गोलाकृति, अण्डाकृति, अथवा श्वेत, कृष्ण, नीलारूप (बैंगनी) तथा नाना वर्णी के मिश्रित–रूप, रक्त–पीतादि, एक–एक स्वतंत्र वर्ण रूप, कठिन चिक्कण, श्लक्ष्ण (सूक्ष्म कृष, स्निग्ध, स्वल्प), पिच्छिल, अर्थात् फिसलाइट पैदा करने वाला, जैसे कीचड, जैसे जल, पिच्छिल जैसे छायाकार मोर की पूँछ, मृदु जैसे शिरीषफूल,

---

[1] महाभारत शातिपर्व, मोक्षधर्म, अध्याय– 184

दारूण जैसे लोहे का भीम, छोटे–बडे–मोटे, पतले, कटे छटे, गोल, सफेद, एकरगे, पचरगे इत्यादि।

रूप की असीमता एक–एक पदार्थ मे विच्छिन्न है। विविधता से देखना और अखण्ड विभिन्नता को एक समाहित असीम में प्रतिष्ठित देखना ही ऑख और आत्मा का काम है। सर्वप्रथम रूप का ऑख से साक्षात्कार होता है। और धीरे–धीर उससे आत्मा का परिचय होता है। यही रूप का वास्तविक तात्पर्य है।

सामान्यतया रूप को दो प्रकार का माना है।

(1) नेत्रो से दिखाई पडने वाला दृष्टिगत रूप

(2) आत्म चेतनागत रूप।

ऑख से देखकर वस्तुओ की पूरी तरह नहीं पहिचाना जा सकता। जब तक हम मन की ऑख से वस्तु को नही देखते तब तक हमे उसके आन्तरिक गुणो का ज्ञान नही होता और तब तक हम वस्तु के पूर्ण रूप से अनिभिज्ञ रहते है। इस हेतु डॉ टैगोर का उदाहरण है मान लीजिए कही पर तीन स्त्रियाँ है, एक पानी भर रही है, दूसरी बाल सवॉर रही है, और तीसरी गोद में बच्चा लिये खिला रही है। यह तीन ही स्त्रियो के दृष्टिगत रूप है, पर यदि पूँछा जाय– उनमे से कौन नौकरानी है, बेटी कौन है, मॉ कौन है तो साधारणतया यही कहा जावेगा, बाल सवॉरने वाली बेटी है जो पानी भर रही है वह नौकरानी है, और जो बच्चे को खिला रही है वह मॉ है। परन्तु यह आवश्यक नहीं, पानी मॉ या बेटी भर सकती है, बच्चा नौकरानी या बेटी खिला सकती है, बाल माँ या नौकरानी सॅवार सकती है। एक स्थान पर तीनो स्त्रियों को देखकर या कोई विशेष कार्य करते देखकर पहचान करना कठिन है, जब तक हम उन्हें अच्छी तरह से पहचानते या जानते न हों अर्थात् दृष्टिगत गुणों के अतिरिक्त आंतरिक और छपे हुये अनेक गुण हैं जिनको जानने के लिए अनुभव की आवश्यकता है। और तभी हम वस्तुओं के रूप का सौन्दर्य एवं आनन्द प्राप्त कर

सकते है। वस्तुओ मे सौन्दर्य आनन्द प्राप्त करने के लिए रूचि का होना आवश्यक है। अपनी रूचि के अनुसार हम रूप को सु और कु दो प्रकार विभिन्नता प्रदान करते है।[1]

कॉगडा चित्रकला में रूप-आकार

कॉगडा शैली के चित्रो मे वक्रीय आकारो को अपनाया गया है और स्त्री तथा पुरूष दोनो के ही अगो मे यथोजित गोलाई तथा सुडौलता है। स्त्रियो के चेहरे, अग–भगिमाओं तथा हस्त–मुद्राओं के बनाने मे चित्रकार ने कमाल कर दिया है। यौवन तथा लज्जा से पूर्ण नारी का गुलाबी चेहरा और उसके स्वस्थ अंग कलाकार ने स्मृति, कल्पना तथा नियमो की जकड के रहते हुए भी यथार्थ और चिबुक गोल, पतले, गुलाब अधर तथा लम्बी–सीधी नासिका बनाई गई है। चेहरे मे गोलाई लाने के लिये गरदन के पास तथा ऑख के पास सुकोमल छाया का प्रयोग किया गया है। कॉगडा के चित्रकारों ने नेत्रों को कमलाकार बनाया गया है और चिबुक गोल, पतले, गुलाबी अधर तथा लम्बी–सीधी नासिका बनाई गई है। चेहरे में गोलाई लोने के लिये गरदन के पास तथा ऑख के पास सुकोमल छाया का प्रयोग किया गया है। कॉगडा के चित्रकारों ने नेत्रों को भावपूर्ण और उल्लासपूर्ण बनाया है जिससे जीवन की सजीवता परिलक्षित होती है। स्त्रियो के सुकोमल, लहराते हुये श्याम केश कन्धों पर नागिन के समान लहराते पारदर्शी दुपटों मे चमकते हुये दिखाये गये है। अधिकांश चित्रों के चेहरों को एक चश्म बनाया गया है तथापि डेढ चश्म चेहरों का प्रयोग भी किया गया है परन्तु उनमें रेखांकन की कुशलता और परिमार्जन नही हैं।[2]

रूप वह क्षेत्र या स्थान (space) है जिसका अपना निश्चित आकार तथा वर्ग होता है साधारण तथा वस्तु की आकृति को रूप कहते है। इसको यदि और स्पष्ट

---

1 कला विचार, लेख डॉ० शुकदेव श्रोतिय, चित्रायन प्रकाशन, मुजफ्फरनगर, (उ०प्र०) पृष्ठ–37-38

2 डॉ० अविनाश बहादुर वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास

करे तो रूप किसी भी पदार्थ का चित्र–भूमि पर पर प्रथम दृश्य–प्रत्यक्षीकरण है–

यह प्रत्यक्षीकरण वस्तुगत भी हो सकता है और कल्पनाजन्य भी।

नियमित आकार अथवा रूप का अर्द्धभाग शेष भाग का ही विलोम होता है, जैसे वृत्त, घन, आयत, गिलास आदि। नियमित आकारो मे एकरसता तथा बौद्धिक सृजनता कम होती है।

अनियमित रूप का अर्द्धभाग शेष भाग से मिलता–जुलता नही होता है जैसे विषमकोण चतुर्भुज तथा त्रिभुज, केटली आदि। अत· चित्र भूमि पर सतुलन करना कुछ कठिन होता है। ये रूप अधिक रूचिकर होते है।

कुछ विद्धानो ने रूप को (क) ज्यामितीय (सूक्ष्म), (ख) अलकारिक (सूक्ष्य + यथार्थ), (ग) प्राकृतिक (यथार्थ) श्रेणियो मे विभाजित किया है। (चित्रकार रूप सृजन करता है, वह अदृश्य कल्पना को चित्र तल पर दृश्य रूप प्रदान कर अपनी संवेदनाओको जीवित करता है – दृश्यमान करना) 'पर प्रवक्ष्यामि रूप यद्यस्य दृश्यते'।

रूप के विभाजन बाह्य आकृति के आधार अथवा गुणो के आधार पर विभाजित है और इनमे पर्याप्त ऊहापोह की सम्भावना है। अत. पूर्व वर्णित सक्रिय तथा सहायक रूप मे विभाजन वैज्ञानिक है तथा कला पक्ष मे उसका व्यवहार सुविधाजनक हैं। रूप की मुख्य आकृति का अंकन सक्रिय रूप के अन्तर्गत तथा शेष पार्श्व भूमि पर बने रूप सहायक के अन्तर्गत आते हैं। इन दोनों रूपों का सापेक्ष्य (Relative) सम्बद्ध है क्योकि एक के अभाव मे दूसरे का अस्तित्व अर्थहीन है। वास्तव में सहायक रूप ही सक्रिय रूप को सम्बल प्रदान करते हैं।[1]

रूप के प्रभाव

रेखाओं के प्रकार ही रूप के भी अपने प्रभाव होते हैं। यह इनके दृष्टिगत

---

[1] एस०के० शर्मा, रूपप्रद कला के मूलाधार, मेरठ, 1972, पृ०–13

तथा आकारगत भार (Visual and Formal Weight) के कारण होता है। रूप के निम्न प्रभाव हो सकते है –

(1) आयताकार (Rectangular), शक्ति (Strength) (Stability) तथा एकता (Unity)।

(2) त्रिभुजाकार (Triangular), शाश्वतता सुरक्षा (security), तथा विकास।

(3) विलोम त्रिभुजाकार (Reverse Triangular), लिप्तता (Entanglement) तथा अशाति (Disturbance)।

(4) अण्डाकार (Oyals) लावण्य (Grace) सौन्दर्य (charm) नित्यता (perpetuation), सृजनात्मकता (Creativeness)।

(5) वृत्ताकार (cirular), पूर्णतया (Fullness), आकर्षण (charm), गति (Motion), विशालता (Immensity), समानता (Equality)।[1]

कॉंगड़ा शैली के चित्रों में रूप - प्रमाण तथा वर्ण

कॉंगडा चित्र मे रूप चित्रण से रूचि उत्पन्न हो गई है और एक तानता नही आने पाई है। रूप की यह विभिन्नता निम्न विधियो से प्राप्त की जा सकती है–

(1) ससार में अनेक रूप विद्यमान हैं। चित्र मे उनका समावेश कलाकार अपनी रूचि तथा शैली के अन्तर्गत करता है। यहॉं वह प्रकृति जनित आकार में परिवर्तन करने को स्वतन्त्र होता है। कॉंगडा शैली के कलाकार ने यथार्थ रूप अकन को ही इति श्री नहीं माना है।

(2) प्रकाश तथा छाया द्वारा भी रूप मे विविधता उत्पन्न की जा सकती है। आकृतियों को विभिन्न रंगतों में रग कर और यदि एक ही रंगत का प्रयोग किया जा रहा है तब उसकी तान में अन्तर करके रूप वैविध्य प्राप्त कर सकते हैं। वर्णो के प्रयोग मे वहीं सावधानी रखनी चाहिए, कहीं इसके अभाव में सक्रिय तथा सहायक

---

1 डॉ० गिरिराज किशोर अग्रवाल, रूपाकन (रूप–चित्रण के तत्व और सिद्धान्त) पृ० – 26

रूपो का सन्तुलन एव तालमेल बिखर न जाए।

(3) रूप मे विविधता पोत के कुशल प्रयोग द्वारा भी प्राप्त की जा सकती है, पोत के द्वारा आकार के प्रभाव के प्रभाव मे अन्तर उत्पन्न हो जाता है। कॉगडा शैली का कलाकार सृजित पोत मे निपुण है उसने इस विविधता का उत्तम प्रकार से निर्वाह कर सकेगा।

अत रूप मे विविधता लाना चित्रकार की योग्यता पर निर्भर करता है। शिल्प शास्त्रो मे भी अनेक प्रमाण तथा विधियॉ सुझाई गई है – राक्षस, देवता एव साधारण मनुष्य के रूप मे विविधता प्रमाण के अन्तर द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। कागडा शैली मे सूक्ष्म–चित्रण मे तो रूप की विविधता का महत्व बहुत ही अधिक है।

अबाध गति से बिन्दुओ को अकित करने से रेखा की सृष्टि होती है। यह कॉगडा कला का सरलतम तथा सार्वभौम माध्यम है। ज्यामिति के अनुसार दो बिन्दुओ के बीच की दूरी को रेखा के द्वारा व्यक्त किया जाता है अथवा अनेक बिन्दुओ को परस्पर मिला देने से रेखा की सृष्टि होती है। किन्तु कला की रेखा ज्यामितीय रेखा से भिन्न होती है। ज्यामिति में जहॉ विभिन्न यत्रो की सहायता से रेखाये खीची जाती है वहॉ कला मे मुक्त हस्त से स्वतंत्रतापूर्वक खीची गयी लोचदार रेखाओ का महत्व है। रेखा निरन्तर प्रवाहपूर्ण भी हो सकती है। चित्र के विस्तार में स्थान पर रखे गये बिन्दुओं आदि से हमारी दृष्टि जो मार्ग बनाती है उसकी अनुभूति भी रेखा के समान हो सकती है। हाथ से खींची गयी रेखा मे वैयक्तिकता एवं विविधता होती है। यह दुर्बल अथवा प्रवाहपूर्ण, कम्पित अथवा सधी हुई, मोटी अथवा बारीक, कोमल किनारों वाली अथवा कटी–फटी भी हो सकती है।

रेखा

चित्रकला मे रेखा के दो भेद है (1) सरल रेखा (2) वक्र रेखा। किसी बिन्दु से एक निश्चित दिशा मे खीची गई रेखा सरल होती है किन्तु यदि रेखा खीचने की दिशा बदलती जाय तो रेखा वक्र हो जाती है।

जब रेखा खींचने मे सभी स्थानो पर एक समान दवाब न हो, साथ ही यह ज्ञान भी न हो कि रेखा किस दिशा मे किस दिशा मे खीची जायगी तो मन मे अनिश्चितता की स्थिति रहने से दुर्बल रेखा का सृजन होता है। यह रेखा कम्पित भी हो सकती है।

दृढता एव शीघ्रता–पूर्वक निश्चित गति और दिशा के अनुसार खीची गयी रेखा सशक्त होती है।

किचित लोचदार, कही हल्की तथा कही गहरी, कहीं धुधली और कही स्पष्ट रेखाएॅ कोमल होती है।

सभी स्थानो पर एक समान बल, गहराई तथा मोटाई प्रदर्शित करने वाली रेखाएॅ कठोर होती है।

किंचित् नम कागज पर जल रगो से जो रेखा खीची जाती है उसके किनारे कुछ धुॅधले हो जाते है। इससे रेखा में कोमलता आ जाती है।

सूखे और खुरदरे कागज पर गाढ़े रंग से रेखा अकित करने से किनारे कटे–फटे रहते है।

प्रत्येक रेखा में कोई न कोई दिशा रहती है। चित्रगत रेखाओं की प्रायः तीन प्रमुख दिशाएँ होती हैं– क्षैतिज ऊर्ध्व एवं कर्णवत्।

रेखा-प्रभाव

चित्रकला में अंकन पद्धति एवं दिशाओ के आधार पर रेखाओं के अनेक

प्रभाव उत्पन्न किये जा सकते है। प्रमुख निम्नाकित है . सरल रेखाओं मे निश्चय और कठोरता होती है। इनमे घनत्व भी सरलता से प्रकट किया जा सकता है।

किचित् घुमावदार रेखाओं में शिथिलता और लोच होती है। इनमें कोमलता, एव मादकता आदि के गुण भी होते है। किन्तु इस प्रकार की रेखाओ का अधिक प्रयोग निरर्थक होता है। वर्तुल रेखाओं मे गति के साथ जीवन तथा सौन्दर्य का भाव भी रहता है।

अत्यधिक मुडी हुई रेखाओ मे शक्ति, क्रियाशीलता एव प्रभाव–शीलता होती है। अधिक जोर देने से वर्तुल रेखा चित्रकार के वश मे नही रहती।

अधिक टेढी–मेडी रेखाएँ आघात पहुँचाती हैं। इनसे मानसिक असन्तुलन, अनिश्चत, हलचल, सघर्ष आदि व्यक्त होते है।

दिशाओ के विचार से रेखाओ के विशेष प्रभाव निम्नांकित है

क्षैतिज रेखाएँ विश्राम, शाति निष्क्रियता आदि व्यक्त करती है।

ऊर्ध्व रेखा प्रतिरोध, शक्ति सन्तुलन, दृढता संयम, ईमानदारी, सत्य कठोरता, महत्वाकाक्षा, दिब्यता, प्रतिष्ठा आदि की व्यजन होती है।

तिरछी (कर्णवत्) रेखाएँ संक्रमण, गति एवं क्रियाशीलता प्रकट करती हैं। सन्तुलन की दृष्टि से इनमे कुछ अधूरापन–सा रहता है अत. ये अपने समकोण पर विरोधी दिशा में खीची गयी दूसरी तिरछी रेखा की अपेक्षा रखती हैं। काँगडा शैली के चित्रो मे अधिकांशतया लयात्मक रेखाओं का प्रयोग किया गया है।

नीचे की गिरती हुई वर्तुल रेखाएँ शान्ति, शिथिलता समर्पण निष्क्रियता एवं निराशा आदि व्यक्त करती हैं।

तीक्ष्ण कोण बनाने वाली सीधी रेखाएँ तीव्र संघर्ष, आघात, व्याकुलता आदि व्यक्त करती है।

कुण्डलीय रेखाएँ (spirals) लयपूर्ण गति को व्यक्त करती है।

एकही बिन्दु से समस्त दिशाओ को जाती हुई (एक पुजीय) रेखाएँ प्रसार एकाग्रता, शक्ति, शोभा आदि व्यक्त करती है।

रेखा द्विआयामी होती है किन्तु विशेष पद्धति से प्रयोग करने पर रेखाओ से त्रिआयामी प्रभाव भी उत्पन्न किये जा सकते है।

गहरे बलो से युक्त तथा मोटी रेखाएँ निकटता प्रदर्शित करती हैं और हल्के बलो वाली बारीक रेखाएँ दूरी प्रदर्शित करती है।

विभिन्न कोणो का उपयोग करने वाली रेखाएँ वस्तुओ के घनत्व अथवा विभिन्न तलो को प्रदर्शित करती है।

रेखा–वर्तना (Line-shading) के द्वारा वस्तुओ के उभरे तथा गहरे तलो अथवा प्रकाश–छाया वाले भागों को भी स्पष्ट किया जा सकता है। इस विधि में रेखा का अपना स्वतत्र अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

रेखाओं के अंकन मे कतिपय ऐसी स्थितियॉ भी आ जाती हैं जब उनके द्वारा कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न होने लगते हैं। कुछ स्थितियॉ निम्न प्रकार है –

यदि समान्तर रेखाओं को भिन्न दिशाओ में खीची गई रेखाएँ काटती हो तो समान्तर रेखाएँ असमान्तर प्रतीत होती है।

यदि एक तिरछी रेखा को बीच में छिपा दें तो रेखा की सीध समाप्त हो जाती है।

यदि दो समान्तर सरल रेखाओं को एक पुजीय रेखाएँ प्रभावित करे तो समान्तर रेखाएँ सरल प्रतीत न होकर किंचित् वक्र प्रतीत होती हैं।

यदि एक समान दो आकृतियॉ ऊपर–नीचे बनी हों तो नीचे की आकृति बड़ी प्रतीत होती है।

यदि किसी रेखा के निकट बडी रेखाएँ खीच दे तो वह छोटी प्रतीत होती है किन्तु छोटी रेखाएँ खीच दे तो वही रेखा बडी प्रतीत होने लगती है।

एक ही रेखा बाहर की ओर कोण बनाने पर बडी और अन्दर की ओर कोण बनाने पर छोटी प्रतीत होती है।

समान लम्बाई की क्षैतिज रेखा छोटी और ऊर्ध्व रेखा बडी प्रतीत होती है। एक ही रेखा के दो बराबर भागो में से एक मे यदि कुछ अधिक भाग कर दिये जाये तो वह भाग बडा और दूसरा भाग छोटा प्रतीत होता है।

कोणीय रेखाओ वाली आकृतियो में परिप्रेक्ष्य का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। जो तल प्रथम दृष्टि मे उभरा प्रतीत होता है वही थोडी देर बाद गड्ढेदार प्रतीत होने लगता हैं सीढियॉ ऐसी प्रतीत होती है मानो हम उन्हे ऊपर से देख रहे हैं किन्तु थोडी देर तक देखते रहने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो हम ऊपर जाती हुई सीढियो को नीचे से देख रहे है और उनका निचला तल दिखाई दे रहा है।

इस प्रकार हमे ज्ञात होता है कि कॉगडा चित्रो की रेखाओं की अनेक विशेषताएँ है। इनके द्वारा वस्तुओं की आकृति, घनत्व, तल निकटता, दूरी कोमलता, कठोरता, शक्तिमत्ता, शिथिलता, प्रवाह स्थिरता, शान्ति, चचलता एव लयात्मकता आदि के अनेक प्रभाव उत्पन्न किये जा सकते है।

(1) रेखा सन्तुलन

कॉगड़ा चित्रों मे रेखा का विस्तार एक सिरे से दूसरे सिरे तक किसी न किसी दिशा में होता है अतः जिस दिशा मे रेखा खीची जाती है, हमारी दृष्टि भी उसी दिशा में दौडने लगती है। यदि एक ही दिशा में अनेक रेखाएँ अंकित हो तो उनमें दृष्टि को अनुकूल दिशा में ले जाने की विशेष शक्ति उत्पन्न हो जायेगी। रेखा की यह दिशा–निर्देशन शक्ति ही रेखा भार उतना ही अधिक हो जायेगा। इसे सन्तुलित करने के हेतु विरोधी दिशा में अन्य रेखाओं का अंकन करना चाहिये।

विरोध के अतिरिक्त सक्रमण द्वारा भी रेखा–सतुलन स्थापित किया जा सकता है जैसा कि स्तम्भो तथा मेहराबो मे होता है। ऐसा करने के लिए दो भारो को मिलाने वाली एक तीसरी रेखा का प्रयोग करना होता है जो दोनो के मध्य सम्पर्क का कार्य करती है। ऐसा करने से अवरोध की तीव्रता कम हो जाती हे।

(2) आकृति सन्तुलन

कॉगडा शैली को आकृतियों मे उनके आकार के अनुरूप ही भार का अनुभव होता है। बडी आकृतियो मे अधिक भार और छोटी आकृतियो मे कम भार होता है। सरल एव अनलकृत आकृतियो की तुलना मे अलकृत आकृतियों मे अधिक भार होता है। इनके सन्तुलन के हेतु भार के आलम्ब–सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है। भार का एक सिद्धान्त यह भी है कि आकृति जिस बिन्दु पर खडी हो उससे दानों ओर उसका भार बराबर हो आकृति गिरती हुई सी न लगे।

(3) वर्ण-सन्तुलन

वर्णो का भार उनकी रगत तथा शीतोष्ण प्रभाव के आधार पर निश्चित किया जाता है। वर्ण का सन्तुलन विरोधी वर्ण से होता है, जैसे पीले का सन्तुलन नीले अथवा बैगनी से और लाल का संतुलन हरे से। शीतल वर्णो के अधिक क्षेत्र मे और उष्ण वर्णो के सीमित क्षेत्र मे प्रयोग से भी सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है। सन्तुलन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि केवल दो ही रंगतों का प्रयोग किया जाये। रंगतों की सख्या इच्छानुसार बढाई भी जा सकती है।

(4) तान-सन्तुलन

जिन वर्णों मे प्रकाश अथवा हल्के बल की मात्रा अधिक होती है वे कम भारयुक्त प्रतीत होते हैं और अन्धकार अथवा गहरे बल वाले वर्ण अधिक भार युक्त होते है। अतएव गहरे बलयुक्त वर्णो का प्रयोग सीमित क्षेत्रों में ही करना चाहिये।

(5) परिप्रेक्ष्य-सन्तुलन

कॉगडा शैली के चित्रो मे प्राय निचला भाग अग्रभूमि और ऊपर का भाग पृष्ठ भूमि समझा जाता है। अग्रभूमि दर्शक के निकट होती है। पृष्ठभूमि प्राय आकाश आदि के रूप में कल्पित की जाती है अत अग्रभूमि मे आकृतियों का जमाव अधिक किया जा सकता है, पृष्ठभूमि में कम। शंकु अथवा पिरामिडाकार सतुलन इसका अच्छा उदाहरण है। इसके विपरीत यदि चित्र के ऊपरी भाग मे बडी आकृतियॉ हो और निचले भाग मे छोटी आकृतियॉ हो तो चित्र का सन्तुलन बिगड जायेगा।

कॉगडा के चित्रो मे निकट तथा दूर की आकृतियो मे भी आकार भिन्नता से सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है। दर्शक के निकट आकृतियॉ बडे आकार मे अकित की जाती है और क्षितिज के निकट आकृतियॉ छोटे आकार की होती है। निकट की आकृतियों मे वातावरणीय परिप्रेक्ष्य के आधार पर गहरे और चटकीले रंग भरे जाते है तथा दूर की आकृतियों में हल्के और धूमिल वर्णो का प्रयोग होता है। इससे भी चित्र मे सन्तुलन स्थापित करने मे सहायता मिलती है।

एक अच्छे चित्र–संयोजन मे इतना सुविचारित सन्तुलन होता है कि कभी–कभी एक छोटे से अंश में परिवर्तन कर देने मात्र से सम्पूर्ण चित्र का सन्तुलन बिगड जाता है। अतएव कॉगडा शैली के चित्रों में सन्तुलन का स्थान बहुत महत्वूपर्ण है।[1]

पोत

(TEXTURE)

कॉगडा चित्रकला में उस परम् शक्ति ने अनेक वस्तुओं का निर्माण किया है। सम्भवतया जीवन भर उनकी संख्या भी न गिनाई जा सके। विभिन्न प्रकार के पत्थर,

---

[1] डॉ० राम कुमार विश्वकर्मा, रूपालेख्य, इलाहाबाद, 200, पृ० 56

उनके वर्ण तथा रूप एव स्पर्श ज्ञान (Tactile feeling) होते है। इसी प्रकार लकडियो के रेशे–प्रवाह, वर्ण तथा धरातल, फूल–पत्तियो की मृदुता तथा वर्ण का आस्वादन दर्शक को सुखद् अनुभूति प्रदान करता है। इसी प्रकार मानव–निर्मित अनेक वस्तुओ मे विभिन्न प्रकार के धरातलो का निर्माण हुआ है।

इन्ही अनुभूतियो को उसी सतह् अथवा धरातल का गुण कहते है। अत किसी भी वस्तु के धरातल का गुण ही पोत है।[1]

कला तत्वो मे पोत का विशेष महत्व है। अतः चित्रकार को इसके प्रयोग मे विशेष कुशलता प्राप्त करना अनिवार्य है। इसी कारण पॉलक्ली ने कहा है – 'हर पदार्थ के अपने गुण होते है। अब जैसे पत्थर है– वह कठोर है और ठोस, अत उसे नर्म वस्तु जैसा नहीं दिखाया जाना चाहिए। हर विचार के लिए उसके अनुकूल एक पदार्थजन्य आकार होता है।'

चित्रकार द्वि–आयामी धरातल एव इस सीमा से घिरी चित्र–भूमि पर अपना कार्य करता है, उसने भित्ति, कपडा, ताड–पत्र, कागज एवं अन्य धरातलो का चित्रण के लिए प्रयोग किया है और वह सदैव प्राकृतिक यथार्थ (Naturalism) से अनुप्राणित भी रहा है। अपने चित्रणकाल मे उसने मानव एव प्रकृति निर्मित धरातलों को चित्र भूमि पर उतारने का यत्न किया है। यह निश्चित है कि उसका सच्चा गुण तो चित्र में नहीं आ सकता परन्तु जिस प्रकार चित्रकार चित्र मे रग भर कर दृष्टिभ्रम उत्पन्न करता है उसी प्रकार समूचे धरातल की अनुभूति को पोत का निर्माण करके अभिव्यक्ति करता है। यह पोत–अभिव्यक्ति चित्रकार प्राचीन समय से ही प्रयोग करता रहा है, क्योंकि कला मात्र दृष्टिगत ही न होकर कलाकार की अनुभूतियों के साथ बंधकर भी चली है।

कला में प्रवीणता किस प्रकार प्राप्त हो सकती है और उसका पोत से क्या सम्बन्ध है। यह निश्चित है कि कलाकार की शारीरिक तथा मानसिक योग्यता पूर्ण

---

[1] The tactile feeling of a surface or the representation of that surface

होनी चाहिए और उसके अनुभव परिपक्व होने चाहिये अन्यथा कलापक्ष के अन्तर्गत वह विषयवस्तु तथा प्राकृतिक रूपो को ही टटोलता रहेगा जबकि यही कला नही है। यह उक्ति आज की समकालीन कला के सन्दर्भ मे विशेष महत्व की है। इस परिपक्वता तथा सचेतनता (Maturity and Awareness) के पश्चात् वह यन्त्रो का चित्रभूमि पर उपयुक्त प्रयोग कर नये–नये पोत सृजन कर सकता है।

पोत का वर्गीकरण

पोत को तीन भागो मे विभाजित किया जाता है–

(1) प्राप्त (Found) – इसके अन्तर्गत वे सभी धरातल आ जाते है जो प्रकृति तथा मानव निर्मित वस्तुओ मे होते है। पदार्थ चित्रण में कलाकार को इसका अध्ययन स्पर्श करके भी करना चाहिए। पोत का वस्तुओ को काटकर तथा सुखाकर भी अध्ययन करना चाहिए।

(2) अनुकृत (Copied) – अनुकरण पद्धति द्वारा निर्मित पोत इसके अन्तर्गत आते हैं। पदार्थ–चित्रण मे प्रतिकृति अकन हेतु चित्रकार इसका प्रयोग करता है क्योकि प्रकृतिदत्त पोत का वह अध्ययन पहले ही कर लेता है। प्राचीन वाङ्.मय में ऐसे अनेक सदर्भ भरे पडे है। आज ऐसे चित्र भी मिलते है जिनमें पोत का सफल अंकन हुआ है। यदि भारतीय लघु चित्रों का अध्ययन करें तो स्पष्ट होगा कि पोत का प्रयोग अनुकृति के आधार पर होते हुए भी अलंकृत बन पड़ा है। अनुकृत पोत के प्रभाव से द्वि–आयामी तल पर चित्रण आयामी प्रभाव भी उत्पन्न किये जा सकते है।

(3) सृजित (Created) – यह उपरोक्त दोनों पोत से भिन्न है। कलाकार अपने यन्त्रो तथा साधनों की सहायता से इनका निर्माण करता है। पानी और तेल रंग परस्पर मिलाने पर, मोटे रग लगाने पर, एवं पोत ससाधनों (Textural Materials) के प्रयोग द्वारा वह कल्पनाजन्य नई सतह तथा धरातल का निर्माण करता है। चित्र कर्म क्योंकि एक सृजन कार्य है, अतः कलाकार नये–नये पोत सृजन करता है। के०के०

हैब्बर, जे० स्वामीनाथन तथा राजस्थायी कलाकार परमानन्द चोयल की कृतियों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि आधुनिक चित्रकार पोतविधि के प्रति कितने सचेत है।[1]

कॉगडा चित्रकला मे जो वस्तुओ के धरातल की संरचना को सवेदित करती है, गठन या पोत कहलाती है जिसे दो प्रकार से अनुभव किया जा सकता है।

(1) देखकर

(2) वस्तु की सतह को स्पर्श करके।

प्रकृति ने वस्तुओं को खुरदुरा चिकना और बहुत चमकदार बनाया है लकडी के रेशे अनेको प्रकार के छोटे बडे, चारखाने, धब्बेदार, लहरदार आदि स्वरूप प्रस्तुत करते है इसी प्रकार पत्थर के विभिन्न धरातलो में नाना प्रकार के प्रवाहमान स्वरूप नजर आते है जिनको देखकर, स्पर्श करके और अनुभव करके हम आह्लादित होते है। यही धरातलीयगुण का अनुभव गठन या पोत कहलाता है। इस प्रकार गठन या पोत चित्रकला का प्रमुख गुण सिद्ध होता है।[2]

दृश्यकलाओं में गठन या पोत का विशेष महत्व है। आधुनिक चित्रकला मे गठन (Texture) का प्रयोग सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ है वानगॉग ने अपने चित्रों में गठन का अद्‌भुत प्रयोग किया है। पालक्ली ने अपने चित्र संयोजनों में गठन के प्रयोग द्वारा दिशा का बोध कराया है। स्टिल लाइफ में गठन के प्रयोग द्वारा कई धरातलों का निर्माण चित्र को गतिशील बनाता हैं। चमकदार चिकने धरातल प्रकाश को अधिक प्रतिबिम्बित करते है। प्राचीन काल में चित्रकला के गठन का पर्याप्त विचार किया गया है। द्विआयामी धरातल जैसे भित्ति, कपड़ा ताड़पत्र, कागज़ आदि का प्रयोग किया जाता रहा है। आजकल गठन के लिए प्लास्टिक मैटोलिक पेपर सैल्यूयज काँच आदि का प्रयोग किया जा रहा है जिससे धरातलों में विविधिता आ रही है।

---

[1] एस०के० शर्मा एवं आर०ए० अग्रवाल,रूपप्रद कला के मूलाधार, मेरठ, 1982, पृ० 33

[2] डॉ० राम कुमार विश्वकर्मा, रूपालेख्य, इलाहाबाद, 2000, पृ० 62

गठन का वर्गीकरण (Classification of Texuture)

तीन भागो मे वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) प्राप्य या उपलभ्य (found or available)

(2) अनुकूल (Copied)

(3) सृजित (Created)[1]

1- प्राप्त या उपलभ्य (found or available) – मानव तथा प्राकृतिक वस्तुओ के धरातल की स्वत निर्मित गठन को प्राप्य या उपलभ्य श्रेणी में रखा जा सकता है। लकडी और पत्थर के धरातलो की प्राकृतिक गठन का अध्ययन करके हम वस्तुसमूह चित्रण मे रखकर अच्छा करते है इसका स्वरूप बनावटी या चटाईदार चिकना या खुरदुरा आदि जैसा होता है।

1- अनुकृत (Copied) – वस्तु–समूह चित्रण में हम चित्रतल का अच्छी तरह अध्ययन अनुकरण के आधार पर करते है और इसका चित्रण वस्तु के धरातलीय प्रभाव को बढाता है। अनुकृत गठन वस्तुसमूह के मध्य तालमेल आदि बैठाता है जैसे तोलिया, बाल्टी, मग और साबुनदानी के वस्तुसमूह चित्रण मे अनुकरण के द्वारा वस्तुओ में प्रयुक्त गठन का चित्रण करने का प्रयास करते है इस प्रकार अनुकृत गठन के द्वारा द्विआयामी चित्रतल पर त्रिआयामी चित्रतल के विस्तार का प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है।

3- सृजित (Created) – कलाकार कल्पना के द्वारा उपकरणों के प्रयोग से हल्का घोल उत्पन्न करता है जैसे तैल रंग और जलरंग के चित्रों के निर्माण में चित्रकार तरह–तरह के हल्के और गाढे रंग लगाकर गठन का निर्माण अपनी कल्पना से सृजित करता है अनेको आधुनिक चित्रकारों ने इस प्रकार के प्रयोग किए है जैसे जे० स्वामीनाथन और के०के० हेव्वार के चित्रों में अनको कल्पित गठन का संचार दिखाई पड़ता है।

---

[1] जी०के० अग्रवाल, कला–समीक्षा, अलीगढ, पृ० 63

गठन का महत्व

गठन के द्वारा चित्रकार चित्रतल की एकरसता को भग कर सकता है और इससे चित्रतल में विविधता आयेगी तथा चित्र सुन्दर बन जावेगा। अन्तराल विस्तार अर्थात् अन्तराल विभाजन मे भी इसका असर पडता है इन दोनो के मेल से चित्र प्रभावशाली और सशक्त होता है।

गठन के द्वारा चित्रकार चित्र रचना में विरोधाभास उत्पन्न कर सकता है संतुलन और एकता का भाव भी उत्पन्न कर सकता है। गठन का प्रयोग चित्रकार की कुशलता पर निर्भर करता है। विषय और भाव के अनुकूल गठन का निर्माण और प्रयोग करना चाहिए। आकरो के गठन में भी मुख्य और गौण आकारो का गठजोड होता है। चित्रकार यह सब अभ्यास और निर्माण के द्वारा ही प्राप्त कर सकता है।[1]

अन्तराल

अन्तराल चित्र का वह तत्व है जिसके अभाव मे संयोजन असम्भव है। द्वि–आयामी चित्र–भूमि ही चित्र का अन्तराल है। अन्तराल का संकुचित अथवा शाब्दिक अर्थ व्यावहारिक नहीं होगा क्योंकि कला की भाषा मे भूमि का विभक्तिकरण व व्यवस्था अन्तराल के अन्तर्गत ही आते हैं।

प्राचीन भारतीय शिल्पशास्त्रों में भी इसके महत्व का वर्णन है। समरागण सूत्रधार में भूमिबंधन, अभिलाषितार्थ–चितामणि में स्थान–निरूपण तथा विष्णु धर्मोत्तर पुराण मे इसे स्थान की संज्ञा दी गई है।

चित्रकार जिस चित्र–भूमि पर अकन कार्य करता है वह स्पष्ट तथा द्विआयामी होती है– यही अन्तराल अथवा स्थान होता है–यही चित्रकार का वह क्षेत्र है जिस पर वह रूप का निर्माण करता है। यही अन्तराल कहलाता है।

चित्रभूमि का वह क्षेत्र परिमित होने पर भी चित्रकार इस पर असीम अनुभवों

1 डॉ० आर०के० विश्वकर्मा, रूपालेख्य, इलाहाबाद, 2000, पृ० 63

को नन्दतिक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अक्षत् भूमि (Open or Virgin Space) सभी सम्भावनाओ के लिए खुली है। अक्षत् भूमि पर कार्य प्रारम्भ करना शब्द–पहेलियो के समान कठिन है क्योकि एक भी बिन्दु उस पर रचते ही, अन्तराल मे क्रिया, प्रतिक्रिया तथा सघर्ष ((Tensions) प्रारम्भ हो जाते है तथा भूमि कुछ भागों मे विभक्त हो जाती है। इस प्रकार रूप तथा अन्तराल का एक सम्बन्ध स्थापित होता है जिसका सम्बन्ध चित्रकार की अनुभूति से है। यदि हम किसी अच्छे चित्र पर सूक्ष्म दृष्टिपात करते है तो ज्ञात होगा कि चित्रकार चित्र की रूपरेखा तैयार करते समय पहले चित्र भूमि का प्राथमिक विभाजन करता है और इस विभाजन के आधार पर ही वह अपने चित्र को पूर्ण करता है। यदि अपूर्ण भारतीय लघु चित्रो को देखें तो इस विभाजन का ज्ञान होगा प्रत्येक शैली मे यह विभाजन पृथक–पृथक् देखने को मिलता है।

चित्रभूमि का विभाजन

चित्रभूमि पर रेखा अकित करते ही चित्रभूमि दो भागो मे विभाजित हो जाती है। यह विभाजन दो प्रकार का होता है–

(1) सम-विभक्ति (Formal Division) – रेखाओं की सहायता से चित्रभूमि को इस प्रकार विभक्त करना कि दाये बायें और ऊपर, नीचे के तल का भार बराबर हो, सम–विभक्ति का प्रयोग सन्तुलन, एकता शक्ति व समता आदि भाव को प्रदर्शित करने के लिए होता है।

(2) असम विभक्ति (Informal Division) – इस विभाजन मे "जैसा इधर, वैसा उधर" वाली परिपाटी का पालन नहीं किया जाता बल्कि यहाँ कलाकार स्वतन्त्र होता है कि वह किसी भी प्रकार का असम विभाजन करे। इसके द्वारा मौलिकता व सृजक का पक्ष प्रबल होता है। यह विभाजन उत्तेजना, प्रगति, सृजन एवं क्रियाशीलता का भाव उत्पन्न करने में सहायक होता है।[1]

---

[1] डॉ० शुकदेव श्रोत्रिय कलाविचार, प्रयाग, पृ० 34

विभाजन की अन्य पद्धति

विभक्ति की कितनी ही प्रणालियो का प्रचलन रहा है लेकिन सभी मे दृष्टि की प्रवीणता व तौल ही सबसे अधिक कारगर सिद्ध हुई है। कलाकार को नये–नये प्रयोग करके अपनी स्वतन्त्र विधि का विकास करना चाहिए। यहॉ यह ध्यान रहे कि चित्रभूमि की विभक्ति के पश्चात् सन्तुलन, विभाजित तल के अतिरिक्त वर्ण एव तान पर भी निर्भर करता है। नीचे कुछ विभक्तियों के उदाहरण दिये जा रहे है–

चित्र (क) मे काले वर्ग मे चिन्हित रेखा की विभक्ति के कारण उसका प्रभाव उन्ही रेखाओं के सहारे चल रहा है। लेकिन चित्र (ख) मे यह प्रभाव सीमित नही है और जैसा चित्र (ग) मे दिखाया गया है, सभी ओर है। इस प्रकार चित्रभूमि पर आकृति द्वारा जो विभाजन तैयार होता है उसमे संघर्ष की गति तथा दिशाये स्वत बन जाती हैं।

निम्नाकित चित्र मे दिखाया गया है कि अ, ब, स, द वर्ग को किस प्रकार वर्ग मे वर्गमूल के सहारे एक क्रम मे बढाकर सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। यह प्रक्रिया हम किसी आयत को विभाजित करने में भी प्रयोग कर सकते हैं।

स्वर्णिम विभाजन-सिद्धान्त (Principle of Golden Section)– प्राचीन यूनानी कलाकारों ने स्वर्णिम विभाजन सिद्धान्त का विकास कर कलाकृतियों मे इसका प्रयोग किया। यह ऐसी विभक्ति है जिसका परस्पर सम्बन्ध इस प्रकार होता है– अ ब . अ स : : अ स : स ब



यह विभाजन ऑखों को सुखद लगता है।[1] एवं कुछ आधुनिक कलाकारों ने इसे अनेक सम्भावनाओं सहित ग्रहण किया है चित्र। इस विभाजन की पद्धति को

---

[1] Its particular distinction lies in the fact that in produces a number of integrally related areas, its character is such that the ratio between the bigger and the smaller measurable quantity is equal to the ratio between the sum of the two and the biger one *e.g* a line cut is this way results in the total lenght divided by the larger part divided by the smaller part.

चित्र मे समझाया गया है। स्वर्णिम विभाजन पद्धति के आधार पर चित्र भूमि को कितने ही रूपो मे विभक्त किया जा सकता है। अभ्यासार्थियो को इस पद्धति के आधार पर स्वय प्रयोग करना अधिक लाभदायक होगा।

विकर्ण-पद्धति (Diagonal Method) – इस पद्धति मे चित्रभूमि पर कोई भी रेखा लम्बतव् खीचिये। यह आधे, चौथाई तथा तिहाई मे चित्रभूमि को विभक्त न करे तो अच्छा है। इसके पश्चात् कोई एक कर्णवत् रेखा खीच दीजिए। जहॉ लम्बवत् तथा कर्णवत् रेखा एक दूसरे को काटे उस बिन्दु से क्षितिज के समान्तर एक रेखा खीच लीजिए। परिणामस्वरूप चित्र भूमि कितने ही आयतो मे बट जायेगी तथा अन्य कर्णवत् रेखाये यदि खीचते चले जाये और कटान बिन्दु से इसी प्रकार समानान्तर रेखायें तब आयतो की अधिक सख्या प्राप्त की जा सकती है (चित्र) ज्यामितीय आकारो तथा अक्षरो के संयोजन के आधार पर भी सुन्दर विभक्तियॉ प्राप्त की जा सकती है।

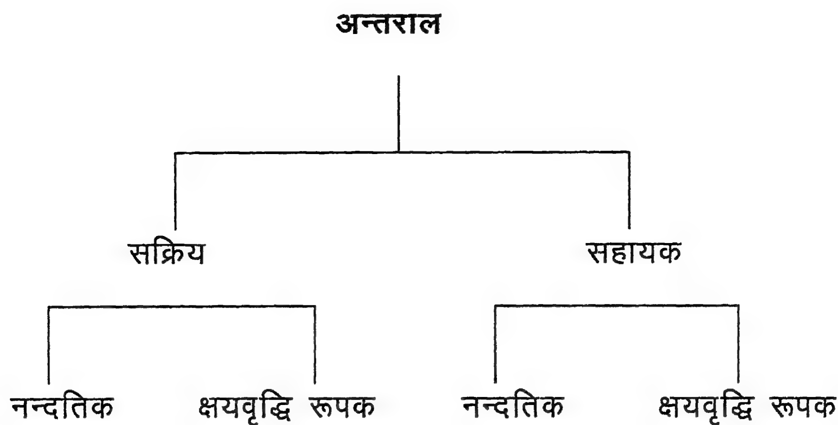
सक्रिय तथा सहायक अन्तराल

(Active and Negative Space)

चित्रभूमि पर जिस विभक्ति का मुख्य स्थान होता है वह सक्रिय विभक्ति तल अथवा अन्तराल (Active, or Positive, or Intended, or Committed Space) कहलाता है तथा अन्य गौण विभक्तियॉ सहायक तल अथवा अन्तराल (Negative or Unintended Space) कहलाती है।

प्रायः संसार के सभी अच्छे चित्रो मे सक्रिय व सहायकतल का सुन्दर समन्वय एवं संयोजन किया गया है। पूर्वीय कला में तो सृजन अधिक ही निखर कर आया है क्योंकि यहॉ अन्तराल का नन्दतिक आधार पर प्रयोग किया गया है। इसी कारण यह ऐस्थेटिक स्पेस कहलाता है। मध्यकालीन योरोपियन कला के अन्तराल का संयोजन दृष्टिगत क्षयवृद्धि (पर्सपैक्टिव) के सिद्धान्त के आधार पर किया गया है। अतः यह

पर्सपैक्टिव स्पेस कहलाता है। उसको निम्न प्रकार से भी प्रस्तुत करते है–



अन्तराल तथा रूप व्यवस्था

(Organisation of Form and Its relation to Space)

वस्तु आकृति जितना स्थान घेरती है वह उसका घनफल परिणाम, अथवा आयतन (Volume) होता है और चित्र मे आकृतियो के परिणाम के आधार पर परस्पर सम्बन्ध होता है। चित्रभूमि द्वि–आयामी होती है और यथार्थ जगत् मे वस्तुये त्रि–आयामी। अत चित्रभूमि पर केवल दृष्टि–भ्रम उत्पन्न करके ही त्रि–आयामी प्रभाव लाते है और आकारो के मध्य दूरी के प्रभाव को स्पष्ट करते है। चित्रभूमि पर यह प्रभाव वास्तव मे उसको विभाजित करके ही प्राप्त किया जा सकता है जिसकी विधि निम्न प्रकार है–

(1) अतिच्छादित तल (Over-lapping Planes) – इस विधि द्वारा आकारों के मध्य दूरी का आभास होता है। जो तल सर्वाधिक निकट होगा वह अतिच्छादित नही होगा। अन्य शेष तल आच्छादित हो सकते हैं, चाहे तल का परिणाम एक समान ही हो।

(2) आकार में विभिन्नता (Variation in Size) – चित्रभूमि पर आकार की महत्ता के अनुसार उन्हें छोटा–बड़ा दिखाकर भी नियोजन किया जा सकता है। अजन्ता के माता तथा पुत्र वाले चित्र में तथागत (बुद्ध) को आकार में विशाल

दिखाकर उनकी वरीयता व ज्ञान का प्रदर्शन किया है। इस सिद्धान्त का प्रयोग मिस्र की चित्रकला मे भी किया गया है।

(3) आकार की स्थिति (Position on the Picture Plane) – चित्र भूमि पर आकृति को विभिन्न स्थान देकर भी दूरी का आभास उत्पन्न किया जा सकता है। चित्रभूमि का सबसे नीचा किनारा सर्वाधिक निकट और इसी क्रम से ऊपर जाने पर दर्शक से दूर होने का आभास देता है।

(4) रेखीय क्षयवृद्धि (Linear Perspective) – जो आकार क्षितिज रेखा के जितने निकट होता जायेगा वह उतना ही छोटा और ओझल बिन्दु (Vanishing Point) पर जाकर उसका अस्तित्व समाप्त हो जावेगा। इस प्रकार क्षयवृद्धि के नियम से आकारो के मध्य दूरी का भाव उत्पन्न किया जा सकता है।

(5) वातावरणीय क्षयवृद्धि (Aerial Perspective) – निकट का आकार स्पष्ट तथा प्रखरवर्ण मे तथा दूर का आकार अस्पष्ट तथा मध्यम रंगतों में होगा– ऐसा वातावरण के झीने परदे के कारण होता है। इस सिद्धान्त का प्रयोग करके भी दूरी का प्रभाव लाया जा सकता है। चित्रभूमि पर गर्म वर्ण तथा शुद्ध रगतो का प्रयोग निकटता और ठण्डे तथा मिश्रित वर्ण का प्रयोग दूरी का बोध कराते है।

अन्तराल मे आकारों को इन विधियो द्वारा संजोकर उसमें सक्रियता तथा प्रभाव उत्पन्न कर सकते है। अत. चित्रभूमि पर अन्तराल व आकारो का सम्बन्ध मधुर होना चाहिए।

कला के सूक्ष्म तत्त्व

लय या प्रवाह

लय समस्त कलाओ की आत्मा है। जिसका अर्थ होता है– प्रवाह। प्रवाह या गति लय का आधार है। इस प्रकार लय का अर्थ हुआ समान तत्त्वो की पुनरावृत्ति से उत्पन्न निरन्तरता। चित्र मे लय, रेखा, तान, वर्ण आदि तत्त्व मिलकर उत्पन्न करते है। लय का स्वरूप आवृत्तिमूलक होता है और गति के आवर्तन में लय निहित रहती है। चित्र में इसके प्रयोग से सौन्दर्य, मधुरता और सरसता उत्पन्न होती है। जब तक चित्र भूमि पर हम कुछ अकित नही करते वह अक्षत यानि शान्त रहती है। जैसे ही चित्र भूमि पर बिन्दु या रेखा का निर्माण करेगे चित्रभूमि मे गतिशीलता पैदा हो जावेगी और एक सुसम्बद्ध आवृतिमय पथ का निर्माण हो जाता है और दृष्टि आने की ओर उसी दिशा मे घूमने लगती है। इससे दर्शक को गति की अनुभूति होती है।

गति के प्रकार

चित्र मे गति सामान्यत. तीन प्रकार से पैदा की जा सकती है :

(1) सरल

(2) कोणीय

(3) लहरदार

प्रकृति में सीधी रेखा वृत्त एवं आयत आदि का प्रभाव होता है अत· लहरदार रेखायें ही हमे गति प्रदान करती है जिससे भौतिक एव मानसिक दोनो सुख मिलता है। दृष्टिपथ सीधा, सरल एव कोणीय होने के कारण दृष्टिगत सुख का अनुभव नही कर पाते परन्तु लहरदार रेखाएं दृष्टि को सुख प्रदान करती है। गति में प्रगति का भाव होता है। यही प्रवाह कहा गया है। कलाचार्य नन्दलाल बोस ने इसे जीवन–प्रवाह कहा है। इस प्रवाह को कई प्रकार से अनुभव किया जा सकता है :–

(1) एक ही आकृति या रेखा को बार–बार अकित करने से प्रवाह का अनुभव होता है। एक निश्चित अन्तर (Interval)) के उपरान्त बार–बार अंकित करने से गति उत्पन्न होती है जो दर्शक की निगाह को एक स्थान से दूसरे स्थान पर इस प्रकार ले जाती है कि दर्शक को पृथक–पृथक आकृतियो के अकित होने का आभास नही होता, बल्कि उसे लयात्मक अनुभूति का अनुभव होता है। पुनरावृत्ति एकरसता से बचने के लिए आकारो मे सूक्ष्म अन्तर कर दिया जाय तो गतिशीलता के अनुभव मे बाधा नही उत्पन्न होगी। उचित अन्तर से सौन्दर्य बढता है, आकृतियो की आवृत्ति का राजस्थानी व पहाडी शैलियो में मुक्त रूप से प्रयोग किया गया है।

गति सृजन प्रविधि

साधारण चित्र में भी गति उत्पन्न करने के चार तरीके हो सकते हैं।

(1) आकृतियों की पुनरावृत्ति द्वारा

(2) आकृति के अनुक्रम द्वारा

(3) अनवरत रेखा प्रवाह द्वारा

(4) विकीर्णन द्वारा।[1]

(1) आकृतियों की पुनरावृत्ति द्वारा

एक ही आकृति की बार–बार पुनरावृत्ति करने से क्रमिक गति का आभास होने लगता है जिससे पुनरावृत्ति मूलक लय का उद्भव होता है। आलेखन–आकल्पन मे इसका विशेष प्रयोग होता है। भारतीय लघु चित्रों में भी इसका खुलकर प्रयोग किया गया है। आकृतियों की पुनरावृत्ति द्वारा प्रवाहिता प्राप्त करने के लिये इकाइयों की मध्यस्थ दूरी अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा लय अनुभूति और सौन्दर्य निर्वाह में एकरसता बाधा उत्पन्न करेगी। इस अन्तर का उचित

---

[1] डॉ० बिमल, कला विवेचन – पृ० 11

प्रमाण ही सौन्दर्य सृजनकारी हो सकता है। साधारणतया आवृत्ति तीन प्रकार से होती है।

(1) लम्बवत्

(2) क्षैतिज

(3) कर्णवत्।

(2) आकृति के अनुक्रम द्वारा

छोटे बडे आकारो के विचार से आकृतियो को व अनुक्रम मे आवृत्ति किया जाय तो दृष्टि क्रमश ऊपर–नीचे घूमती हुई प्रतीत होती है। अनुक्रम द्वारा उत्पन्न गति से कलाकृति मे मधुरता एवं आकर्षण पैदा होता है। इसे दो प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है (1) स्पष्ट अनुक्रम और (2) जटिल अनुक्रम।

(3) अनवरत रेखा प्रवाह द्वारा

यदि किसी रेखा अथवा आकृति को घुमाव देते हुए आगे बढाया जाय तो प्रवाह या गति का अनुभव होता है। अजन्ता के भित्ति चित्रों में रेखाओ, आकृतियों एवं वृक्ष लताओ आदि का लयात्मक अकन इतना सशक्त एव महत्वपूर्ण है कि चित्र महत्वपूर्ण एव मनोहारी बन गए हैं। हाथियो आदि का प्रवाहमान अंकन अजन्ता की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है।

(4) विकीर्णन द्वारा

किसी आकर्षण बिन्दु से सभी दिशाओं में गति को विकीर्ण अथवा प्रसारण करती हुई आकृतियों या रेखाओ को अंकित करने से लय का बोध होता है। इसके दो स्वरूप हो सकते है।[1]

(1) बाह्योन्मुखी

(2) केन्द्रोन्मुखी।

---

[1] Goldstein, H R V. Art in everyday life, pp. 108

(1) बाह्योन्मुखी

लय का अर्थ है लीन होना, घुल मिल जाना। बाह्य रूप से किसी क्रिया और आंतरिक रूप से किसी भाव के साथ तादात्म्य कर लेना ही लय है।[1] जैसा भाव होता है उसी के अनुरूप शारीरिक चेष्टायें होती है। ये चेष्टाएं गति एव वाणी मे भावना स्वरूप व्यक्त करती हैं इसी से कलाओं मे लय की सृष्टि सम्भव होती है। इसी को देख कर दर्शक भी लय का अनुभव करता है। इस प्रकार मानव मे उत्पन्न हुई लय कलात्मक भावना के सहारे पुन. मानस तक पहुॅच जाती है।

(2) केन्द्रोन्मुखी

इस प्रकार लय का पश्चिमी परम्परा में अर्थ है समय अथवा उन्ही अवयवों की पुनरावृत्ति से उत्पन्न नैरन्तर्य। इसकी निष्पत्ति गति प्रवाह और गति–विराम के पारस्परिक एव क्रमिक सवात से होती है। लय का स्वरूप तत्वत. आवृत्ति मूलक है तथा उसकी व्याति दिक् और काल दोनों मे है। सगीत और कविता में लय काल–सापेक्ष रहती है और चित्रकला, मूतिकला, तथा वास्तु में दिक्–सापेक्ष कलाओं में लय के तीन भेद हैं–

द्रुत, मध्यम तथा विलम्बित यह गति के भेद भी कहे जा सकते है। गति के आवर्तन मे लय निहित रहती है और आवर्तन के अनेक रूप हो सकते है। स्थूल आवृत्ति के अन्तर्गत सूक्ष्य आवर्तन और सूक्ष्मतर प्रत्यार्वनो की स्थिति रह सकती है।

(1) लय का अर्थ है क्रिया के पश्चात् या बीच की विश्राति अर्थात् क्रियाविरति को 'लय' कह सकते है। क्रिया में विश्रांति होने से काल के गुरू अवयवों का लघु में लीन होना 'लय' है।[2]

(2) लय का अर्थ है लीन होना, घुल मिल जाना। वाह्य रूप से किसी क्रिया

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश।

[2] डॉ० लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य पृ० 12

और आतरिक रूप से किसी भाव के साथ तादात्मय कर लेना लय है।[1]

(3) सगीत मे लय की ईकाई ही वह तत्व है, जो सबसे अधिक दुहराई जाती है और यही कारण है कि सभी प्रकार की लये और ताल जो एक बार भी विकसित हो सके, सुरक्षित बनी रहे।[2]

(4) लय एक सगठित, गतिशील शक्ति है जो महाकाली के क्रीडित लीलाभाव को उत्पन्न, सन्तुलित और प्रेरित करती है महाकाली एक ऐसी शक्ति है जो इस बदलती वास्तविकता को उत्पन्न पोषित और विनाशित करती है।

आचार्य आर०एन० टैगोर ने लय की परिभाषा कुछ भिन्न प्रकार से प्रस्तुत की है

उनके अनुसार 'लय' केवल शब्दो के नपे–तुले मिश्रण मे नही बल्कि विचारो के महत्वपूर्ण सहयोग में, विचारो के सगीत से एक निश्चित सिद्धान्त की वितरण प्रणाली द्वारा उत्पन्न जो कि वास्तव में प्राथमिक रूप से तार्किक नही प्रमाणिक है।'' उन्होने आगे कहा है कि उत्तम लय में एक कलाकृति, उन तारों के जैसे बन जाती है जो अपनी प्रकट निश्चलता मे भी कमी स्थिर नही होते हैं, जैसे एक स्थिर लपट जो वास्तविकता मे 'गति' है। एक श्रेष्ठ चित्र हमेशा शब्दों में बोलता है, परन्तु अखबार में से समाचार, यद्यपि किसी शोक जनक घटना का हो, तथापि मेरे हुये बच्चे का पैदा होने जैसा होता है। कोई समाचार अस्पष्ट दैनिक पत्र मे साधारण हो सकता है, परन्तु उसे उचित लय देने में वह कभी भी चमकता बदन होगा, वही कला हैं।[3]

1 लय एक नपी तुली गति के विचार का सूचक है जो कि हमें काल का एक समापन और सुडौल प्रतिबन्ध की कल्पना देती है।

लय का शाब्दिक अर्थ है संयोग, एकरूपता, मिलना। पारिभाषिक अर्थ में लय को तालों एवं काल–माप का आधार माना जाता है। गति ही प्रकृतिम की सारी

---

[1] श्रीराम प्रकाश सक्सेना, प्रागैतिहासिक संगीत मे कलात्मकता का उद्‌भव और विकास पृ० 213
[2] डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्ती सगीत में वृत्ति एव गति पृ० 452
[3] डॉ० गिरिराज किशोर अग्रवाल कला समीक्षा पृ० 168

क्रियाओ का आधार है। दिक् एवं आकाश के नक्षत्रो की गति से लेकर घास के स्पन्दन तक प्रकृति की समस्त क्रियाएँ कतिपय मूलभूत नियमो पर आधारित है। दार्शनिक कहेगे गति ईश्वरीय अभिव्यक्ति का आधार है। नटराज के नृत्य मे यही आधार भूत गति प्रतीक के रूप मे प्रतिष्ठित है।[1]

चित्र मे लय और मधुरता हमे शाति अथवा मनोरजन का बोध कराते है। कटुता हमे कौतूहल भावना से परिचित कराती है। अचानक कम्पन भी गोद मे आराम से सोए हुए बालक की नीद मे बाधा, पक्षियो की अकस्मात उडान मैदान में बैठे शिकारी का ध्यान भग कर देती है। प्रकृति में यह विपरीत गतियॉ ठीक उसी प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न करती है। जिस प्रकार रगो की कटुता एक चित्र मे।[2]

लय तत्त्व का महत्व

सभी कलाकृतियो का उद्देश्य आनन्द को अनुभूति में कला का तकनीकी ज्ञान विशेष सहायक होता है। वैसे साधारण व्यक्ति भी किसी कलाकृति को देखकर कुछ न कुछ प्रभावित होता है किन्तु कलागत विशेषताओं से परिचित व्यक्ति ही उसके मर्म एव गूढ दर्शन को समझने मे समर्थ हो पाता है। अतः कलाकृति के रसास्वादन हेतु कला सम्बन्धी तत्वो एवं नियमो की जानकारी अति आवश्यक है। चित्रकला मे प्रयुक्त प्रमुख सांगीतिक तत्वो में लय एक प्रमुख तत्व है।

लय (Rhythm)

गति अथवा लय सगीत का प्रमुख एवं प्रथम तत्व है, क्योंकि संगीतोपयोगी ध्वनियो की उत्पत्ति मे नियमित ध्वंनि आंदोलनो का कम्पन्न अनिवार्य है। अन्यथा वह ध्वनि संगीतोपयोगी नहीं होगी। गति के कारण ही शरीर का कण–कण निरन्तर कम्पित होता रहता है। गति न केवल संगीत की प्रमुख भित्ति है अपितु सारा जीवन ही उसी पर अवलम्बित है। सम्पूर्ण वस्तु जगत् (ब्रहमाण्ड) गतिमान है। चेतना गति

---

[1] आर०सी० निवासन, भारतीय सगीत लय तत्त्व पृ० 200

[2] असित कुमार हल्दार, ललित कला की धरा, पृ० 20

का प्रतीक है। और इसका मूलाधार गति है जो अपने शाश्वत् नियमो के विधान सगीत मे बधी है। आचार्य लालमणि मिश्र ने अपने शोध–ग्रथ "भारतीय सगीत वाद्य" मे लय की परिभाषा करते हुये कहा है कि "नियमित गति ही लय है जो प्रबल–अबल की भावना की जननी है। गति का यह बल–अबल अनजाने ही प्रकट होता है, मानो यह कानो की इच्छाओं की स्वाभाविक पूर्ति है।[1]

इसी प्रकार डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्ती ने भी अपने एक लेख मे लय का अर्थ, क्रिया के पश्चात् या बीच की विश्राति अर्थात् क्रिया विरति को 'लय' कहा है। क्रिया मे विश्राति होने से काल गुरू अवयवों का लघु मे लीन होना 'लय' है।[2] लय की धारणा लघु काल क्रम के बिना सभव नही है। आचार्य भरत ने लय को काल कृत माना है–

तत कलाकाल कृतो लय इत्यभिसंज्ञित
(नाट्यशास्त्र 31-6)

आचार्य अभिनय गुप्त ने बिलंबित आदि काल भेदो की संपादना को "कालकृत" कहा है।

विश्राति युक्तया काले क्रियया मानमिष्यते
क्रियानन्तर विश्रान्तिर्लयः स विधो मत·।
सगीत रत्नाकर

क्रिया के पूर्व कथन काल में जो अन्तराल है उसे लय कहा है। अर्थात् दो क्रियाओ के बीच में पडने वाला अन्तराल लय कहलाता है।

1. पुनरावृत्ति

यदि किसी आकृति को एक निश्चित अन्तराल के उपरान्त पुन पुन· अकित किया जाय तो उसमें गति उत्पन्न हो जाती है। जो दृष्टि को एक आकृति से दूसरी

---

[1] डॉ० लालमणि, भारतीय सगीत वाद्य पृ० 1

[2] डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्ती, सगीत में वृत्ति एव गीति, दृष्टव्य निबध संगीत – पृ० 452

आकृति तक इस प्रकार ले जाती है कि दर्शक को आकृत्तियो के पृथक–पृथक अंकित होने का आभास नही हो पाता और उसे लयात्मक अनुभूति होती है। आकृतियो का अन्तराल अधिक नही होना चाहिए अन्यथा लय की अनुभूति मे बाधा होती है।

2. क्रमिक आरोह-अवरोह

यदि किसी स्थान पर क्रमश बडे एव छोटे होते हुये कई आकृति समूह अकित कर दिये जाये तो उसमे आरोह–अवरोह की अनुभूति होती है। हमारी दृष्टि ऐसी आकारो पर शीघ्रता से चलती हुई लय का अनुभव करती है।

3. अविरल रेखा प्रवाह

यदि किसी रेखा अथवा रूप में वर्तुल घुमाव देते हुये उसे निरन्तर आगे बढाते जाये तो उसमें एक विचित्र लय की अनुभूति होती है। शंख के मुख भाग में इसी प्रकार की लय होती है। कुन्डली, पेचक एवं गोमत्रिका आदि इसी के उदाहरण है।

4. विकीर्णन

यदि केन्द्रीय अथवा आकर्षण बिन्दु से सभी दिशाओ मे गति को विकीर्ण करती हुई आकृतिया अथवा रेखाए अकित की जाए तो लय उत्पन्न होती है। जैसे सूर्य की किरणों से चारों ओर आभा विकीर्ण होती है अथवा कमल की पुखडियॉ केन्द्र से निकलकर चारों ओर फैल जाती है। उसी प्रकार सुन्दर की अनुभूति विकीर्णन द्वारा उत्पन्न हो जाती है। यह दो प्रकार से हो सकती है। जब गति की अनुभूति केन्द्र से बाहर की ओर हो तो लयात्मकता बाह्योन्मुखी होती है किन्तु जब गति की अनुभूति बाहर से केन्द्र की ओर हो तो लय की अनुभूति केन्द्रोन्मुखी होती है। रंग और रेखाओं द्वारा भी लय की उत्पत्ति की जा सकती है। चटकीले और धुंधले रंगो के व्यवस्थित प्रयोग से कलाकार दर्शक को दिशा प्रदान कर सकता है।

अपने भावों और अनुभवों को व्यक्त करने के हेतु कलाकार स्वयं को संसार

से खीचकर ध्यान द्वारा एकाग्र करता है। मुक्त और साधक भी ईश्वर की महिमा जानने तथा ससार की वास्तविकता को समझने के हेतु इसी प्रकार की साधना करता है। साधक अपनी अनुभूतियो को सम्प्रेषित करने मे कभी–कभी असमर्थ भी रहता है अत आध्यात्मिक अनुभूति नितात एकान्तिक भी हो सकती है।

कलात्मक अनुभूति मे प्रेषणीयता का गुण होता है इसी से मानसिक रूप मे अनुभूत लय को कलात्मक माध्यम के द्वारा प्रस्तुत करना सम्भव होता है।

कलाकार के अन्तर मे ध्वनियों, शब्दो, रग–रूपो आदि की जो सगतियॉ होती है उनके साथ समाज सहयोग करता है। कला की भाषा मे इसे अभिव्यजना करते है। इन सगतियो के साथ ही कलाकार अपने भाव जगत की लय को भी व्यक्त करता है जो ऐन्द्रिक रूपो मे ही प्रकट होती है। ऐन्द्रिक होने के कारण इन रूपों का साधारणीकरण भी सरलता से हो जाता है। श्रेष्ठ कलाकृतियें मे आन्तरिक और बाह्य दोनो की सुन्दर सगति की जाती है। जिससे कलाओ में इन्द्रियानुभूति से लेकर गहनतम् विचारों को व्यक्त करना सम्भव होता है।

कलाकार सभी अनुभवों का समन्वय करता है, उनके विस्तार नहीं होता। वह समस्त विरोधी भावों में सन्तुलन स्थापित करता है विरक्त होकर तो कुछ भी सम्भव नही है। भौतिक के सहारे ही आध्यात्मिक की ओर बढा जा सकता है। अध्यात्मिक के क्षेत्र में आत्मा का वास्तविक रूप ही ब्रहम है। सांसारिक सौन्दर्य उसी का एक पक्ष है। ससार के सौन्दर्य दर्शन में कलाकार उसी ब्रहम की ओर अप्रत्यक्ष रूप से अपनी आत्मा की सुन्दरता को ही देखता है। वस्तुओं की एक सूक्षता, उनके अनिवार्य गुणो के समन्वय ही परम सौन्दर्य है। उसमे औचित्य भी होता है। ब्रहम पूर्वा है और अनेक वस्तुओं मे अपनी सुन्दरता को संगीत पूर्ण विधि से व्यक्त करता हैं।

सन्तुलन

काँगड़ा चित्रों में इन सब बातों में सम–सन्तुलन होता है। इसके विपरीत

अवस्था मे असम सन्तुलन होता है। चित्रकला में सम–सन्तुलन के विचार से आकृतियो की प्राय तीन सयोजन– व्यवस्थाएँ (compositional patterns) है

1 ऊर्ध्व (Vertical), क्षैतिज (Horizontal) एव कर्णवत् (Diagonal)

2. त्रिभुजाकार (Triangulal), पिरामिडाकार (Pyramidal) एव बहुभुजाकार (Polygonal)

3. वृत्त अथवा कुण्डली पर आधारित (Circular, Oval or Spiral)

कॉगडा चित्र की भॉति कविता आदि मे भी सन्तुलन देखा जाता है। छन्द मे मात्राओ का सतुलन, सन्तुलित भाव और तदनुरूप, सन्तुलित भाषा, घटना की गतिशीलता को समस्त कृति में फैला देना आदि कलाकृति को श्रेष्ठ बनाने में सहायक होते है। इस प्रकार सभी दृश्य तथा श्रव्य कलाओं मे सन्तुलन अनिवार्य है।[1]

सन्तुलन वह नियम है जिसके आधार पर चित्र–भूमि के समस्त विरोधी प्रभावो को व्यवस्थित किया जाता है।

जब हम किसी कॉगडा शैली के चित्र पर दृष्टिपात करते हैं तो हमारी दृष्टि पहले मुख्य वस्तु अथवा आकर्षण के केन्द्र पर पहुॅचती है। वहॉ से वह अन्य वस्तुओं पर होती हुई सम्पूर्ण चित्र भूमि पर घूम जाती है। मुख्य आकृति के अतिरिक्त अन्य आकृतियॉ भी हमारे मन मे या तो अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करती है या विरोध के द्वारा मुख्य आकृति के प्रभाव को बढ़ाती है। यदि चित्र के एक भाग मे हम कुछ आकृतियॉ अंकित कर दें और चित्र का शेष भाग रिक्त छोड़ दे तो हमें उसकी रिक्तता अखरने लगती है। हम चाहते है कि वहॉ भी कुछ अंकित हो और हमारी दृष्टि वहॉ भी रूक–रूक कर आकृतियों का रसास्वादन करती चले। चित्र के जिस भाग मे आकृतियाँ अंकित होगी वह 'भारी' और जिस भाग में रिक्तता होगी वह 'हल्का' प्रतीत होगा। यदि किसी व्यक्ति का एक पैर मोटा और एक पैर पतला हो

---

[1] गिरिराज किशोर, अग्रवाल, रूपाकन, अलीगढ, पृ० 155

तो मोटे पैर मे अधिक भार अनुभव होगा। कला के विषय मे भी यही सत्य है। कृति की रचना अथवा आस्वादन के समय 'भार' या 'वजन' का अनुभव स्वय ही होने लगता है और यदि कृति का कोई भाग बडा और दूसरा छोटा है अथवा कोई भाग अधिक सकुल और दूसरा भाग रिक्त है तो एक भाग मे भार और दूसरे मे हल्कापन अनुभव होने लगेगा।

भार का आलम्ब सिद्धान्त

भार की इस अनुभूति की तुलना भौतिक तुला से की जा सकती है। तुला के केन्द्र मे सुमेरू अथवा आलम्ब रहता है जिसके दोनो ओर समान लम्बाई का दण्ड होता है। हम दण्ड के एक सिरे पर जितना भार लटकाते है, दण्ड के दूसरे सिरे पर भी उतना ही भार लटकाने से दोनो ओर का भार सन्तुलित होता है। यदि हम दण्ड के एक सिरे पर लटके भार को आलम्ब की ओर खिसका दे तो उसका भार कम हो जायेगा फलत· दूसरा सिरा अधिक भार के कारण नीचे झुक जायेगा। भार का यह अन्तर गुरूत्वाकर्षण और उसके अवरोधक बल के कारण होता है। यदि हम पहले सिरे पर लटके भार की मात्रा बढा दें तो आलम्ब के निकट आने पर भी वह हल्का नहीं होगा और तुला में दोनों ओर समान भार रहेगा।

ताल

कॉगडा कला मे समस्त के आधार पर कल्याणकारी भावनाओं का स्वरूप निर्मित हो सकता है। प्राचीन काल से ही गीत नृत्य एवं ललित् कलाओं के ताल द्वारा सन्तुलित करने की परम्परा रही है। संगीत का ताल रूपीय संयम ही यह नियत्रित करता है अथवा नृत्य इतना अधिक विलंबित न हो जाए कि गति की चकाचौध में कला का सौष्ठव नष्ट हो जाये जिस प्रकार लावण्य योजना चित्रकला में कार्य करती है उसी प्रकार संगीत ताल स्वच्छ ताल को नियंत्रित करता है। जिस प्रकार सगीत में रस–निष्पत्ति में उसी प्रकार चित्रकला में तालवान सौन्दर्यानुभूति के लिए आवश्यक है। चित्रकला में भी तालमान उतना ही महत्वपूर्ण है जितना संगीत में।

'तालमान' अर्थात् प्रमाण से ही यह सम्भव है कि आकृतियाँ रोचक और स्वाभाविक होगी। विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ के ताल होते है जिनसे उनको भलीभाति जाना जा सकता है। नवताल का भी प्राविधान किया गया है। नवताल मे निर्मित आकृतियाँ अच्छी मानी गई है। मूर्ति, स्थापत्य एव अन्य कलाओ मे भी तालबद्धता होती है। प्रत्येक स्वरूप छद तथा तालमान पर आधारित होता है।

भारतीय शास्त्रो में उल्लिखित है कि ताल के मनुष्य मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। इसे अधिक ताल की विशेषता क्या हो सकती है।

ताल के प्रभाव से सम्मानित ललित कलाये मर्यादा में बध जाती है। जब वह ताल के साथ चलती है तभी कलाओं में आकर्षण उत्पन्न होता है। यही कारण है कि कलाओ को धर्म, अर्थ काम, मोक्ष दिलाने वाला सिद्ध किया गया है।

"धर्मार्थकाममोक्षणामिवमेयैकसाधनम्।।"[1]

भारतीय कलाओ में ताल का प्रयोग कब से प्रारम्भ हुआ ? इस पर प्रामाणिक रूप से कुछ कहना सम्भव नही हैं। आचार्य भरत ने ताल का इतना विस्तृत विवेचन हुआ है कि इसके पूर्व ताल का विकास न हुआ हो यह सम्भव नही है। ईसा के सहस्त्र वर्ष पूर्व भी कलाये उन्नत अवस्था में थी। तांबे की नृत्यनशील मूर्तियां और कण्ठ से स्वरो का निर्माण होता है एव काष्ठ ही वह माध्यम है जिसके द्वारा प्राणवान गानोपयोगी नाद की सृष्टि उत्पन्न करती है।

भारतीय सागीतिक परम्परा का सामवेद प्रथम प्रधान ग्रन्थ है।

सामगान में द्रुत, लघु, गुरु, प्लुप आदि मात्राओं का स्थान प्राप्त था।

वैदिक ओर लौकिक संगीत में मात्रा गिनकर हाथ से ताली देने की परम्परा थी। वैदिक कालीन कलाओं में वैदिक व्यवस्था थी वह सचमुच अनुकरणीय है।

---

[1] डॉ० राम कुमार विश्वकर्मा, भारतीय चित्रकला, मे संगीत तत्त्व पृ० 95

महाभारत काल मे ताल देने की रीति उल्लेखनीय है।

पाणिताल सतालश्च शम्यातालैहि समयस्त था।
सप्रहृष्टैहि प्रवृत्यादि्भ सर्वस्तत्रतिर्षध्यते।।[1]

आचार्य भरत नाट्य शास्त्र शुद्ध, विशुद्ध तालो का उल्लेख किया है। शक्या या ताल क्रिया का उल्लेख भी नाट्य शास्त्र का उल्लेख है। श्रीमद्भागवत् मे दशम शब्दों में ताल महत्व प्रतिष्ठित है।

ताल शब्द की व्युत्पति 'तल' धातु से हुई है। विभिन्न विद्धानो के अनुसार ललित कलाओ की प्रतिष्ठा ताल से हुयी है। ताल को ललित को भित्ति बुनियाद कहते है।

चित्र में लय तत्त्व का महत्व

लय समस्त कलाओ की आत्मा है, जिसका अर्थ है प्रवाह या गति इस प्रकार लय का अर्थ हुआ समान तत्वों की पुनरावृत्ति से उत्पन्न निरन्तरता। चित्र मे लय, रेखा तान, वर्ण आदि तत्व मिलकर लय उत्पन्न करते हैं। लय का स्वरूप आवृत्तिमूलक होता है और गति के आवर्तन मे लय निहित रहती है। चित्र में इसके प्रयोग से सौन्दर्य, मधुरता और सरसता उत्पन्न होती है। जब तक चित्र भूमि पर हम कुछ अंकित नहीं करते वह अक्षत यानि शान्त रहती है। जैसे ही चित्र भूमि पर बिन्दु या रेखा का निर्माण करेंगे चित्र भूमि में गतिशीलता पैदा हो जावेगी और एक सुसम्बद्ध आवृत्तिमय पथ का निर्माण हो जाता है और दृष्टि आगे की ओर उसी दिशा मे घूमने लगती है। इससे दर्शक को गति की अनुभूति होती है।

गति से प्रगति का भाव होता है। यही प्रवाह कहा गया है। कलागुरू नन्द लाल बोस ने इसे जीवन प्रवाह कहा है। लगभग सभी कलाओ में लय और ताल, अनुपात, संगीत, सतुलन, समप्रवाह आदि समान रूप मे जुडे है। अनुपात रक्षा जिस

---

[1] डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा पृ० 10

तरह चित्र के रूप अकन चित्र के लालित्य सृष्टि के लिय अनिवार्य है उसी तरह समस्त जीवन मे लय महत्वपूर्ण है। सन्तुलन, लय, सयोग, लय का स्थाई ललित कलाओ मे सन्तुलन पदार्थ का न होकर भावो का होता है।

गति अथवा लय चित्रकला का प्रमुख तत्व है। इस पर सारा जीवन अवलम्बित है। 'लय' कला के विकास के साथ–साथ स्वाभाविक रूप से चलती है किन्तु चित्र की लय भौतिक सत्य न होकर लाक्षणिक समझी जा सकती है क्योकि चित्र के साथ लय को बाधना कठिन होता है चित्र को दर्शक चाहे जहॉ से आरम्भ कर सकता है फिर भी चित्रकार ऐसा प्रयोग कर सकता है दर्शक की दृष्टि पहले वही जाये फिर उसी दिशा से आगे बढे।

लय के दो अर्थ होते है एक शाब्दिक, दूसरा परिभाषिक। लय का शाब्दिक अर्थ है लीन होना। परिभाषिक अर्थ मे बाह्य रूप से किसी भाव के साथ तादात्म्य कर देना ही लय है। जैसा भाव होता है उसी के अनुरूप शारीरिक चेष्टाये होती है। ये चेष्टाएं गति और वाणी मे अपना स्वरूप व्यक्त करती है, इसी से कलाओं में लय की सृष्टि होती है। इसी को देखकर दर्शक भी लय का अनुभव करता है। लय का स्वरूप एक साथ गद्यात्मक एवं आवृतमूलक होता है और इसकी व्याप्ति दिक् और काल दोनो मे है। सगीत कला मे लय काल सापेक्ष रहती है और चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला मे दिक सापेक्ष। इस प्रकार लय की व्याप्ति सभी कलाओं में है।

मानव ने प्रकृति के नियमित परिवर्तन एवं जीवन के विकास में विभिन्न तालमान का अनुभव किया। प्रकृति में समयक्रम की जो निश्चित गति है वहीं ललित कलाओ में लय बनकर उसे उपयोगी सरस और स्थायी स्वरूप देती है। प्रकृति के लगभग सभी वस्तुओं में उतार–चढ़ाव मिलता है ठीक उसी प्रकार संगीत के स्वरों में जैसे क्रमिक आरोह–अवरोह होता है और उससे नवीनता की सृष्टि होती है। लय आवृत्तिमूलक भी होती है जैसे कोई ताल एक सम की जगह से आरम्भ करके सम

पर जाये तो एक आवृत कहेगे दो बार मे सम पर आ जाने से दो आवृत्त कही जायेगी। आवृत्ति से लयात्मकता आती है। कॉगडा शैली के चित्रो मे समान आकृतियो को एक निश्चित अन्तराल के उपरान्त बारबार अकन से आवर्तन पाया जाता है इससे मुख्य भाव को बल मिलता है।

लय प्रकृति मे भी हैं और कला मे भी नक्षत्रो की गति ऋतुओ का परिवर्तन एव आवागमन का चक्र प्राकृतिक लय के प्रतीत है यह लय कालाधीन है अर्थात् काल सापेक्ष है। लेकिन देशाधीन लय भी प्रकृति में अनुभूत की जा सकती है उदाहरणार्थ–पर्वत श्रृंखला के आरोह अवरोह को देखकर लय का आभास हो सकता है। पर्वत–श्रृग पहले से ही ऊँचे है किन्तु जब हमारी दृष्टि ऊँचे से नीचे स्थलो पर पहुँचती है तो हमे आरोह अवरोह का आभास होता है। कलाकार अपने–अपने माध्यम के अनुसार इसी लय के विभिन्न रूपो का प्रयोग करते है। लयहीन कलाकृति दर्शक को प्रभावित करने में असमर्थ रहती है। कविता की लय कथानक के साथ–साथ स्वाभाविक रूप मे चलती है किन्तु चित्र की लय को दर्शक के साथ बांधना कठिन है अत· चित्र की लय भौतिक सत्य न होकर लाक्षणिक रूप मे ही समझी जा सकती है। चित्र मे आरम्भ से ही लय के आरोह–अवरोह का आकर्षण दर्शक को आकर्षित करता है।

भारतीय ललित कलाओं का उद्देश्य एक है, वह है आनन्द प्राप्ति कविता, मूर्ति, चित्र, नृत्य, गायन आदि सभी कलाये मूल आनन्द को अपनी–अपनी विधाओ मे पकडना चाहती है इस दृष्टि से एक तत्व की खोज है और सभी को प्राप्त किया जाता है। मध्यकालीन भारतीय चित्रशैलियों में लय, ताल, आरोह, अवरोह, आवृत, स्वच्छन्दता, संगति, समता और आनुपातिकता के प्रसंग में डॉ० एस०एन० दासगुप्ता का मत हैं कि यदि किसी वस्तु के ऊपर–नीचे, दायें–बायें युगबद्ध भाव से एक जाति विन्यास नहीं हो पाता तो उस वस्तु की सुषमा ही प्रकट नहीं हो पाती जिस प्रकार संगीत के स्वरों में लय अपेक्षित है उसी प्रकार चित्रकला में भी रंगों और रूपों में

सामन्जस्य अपेक्षित है।

कॉगडा शैली के चित्रो का लय बोधक धरातलीय संयोजन मानवाकृतियो की क्रियाशीलता, वादिकाओ की थाप के साथ अन्तराल की सगति में दिखाना क्रियान्तरविश्रान्ति मूलक लय का आभास दिया गया है। वृक्षो के अकन मे एक समान आलकारिक प्रभाव दिखाकर सगति उत्पन्न की गयी है। चित्रों की रंग योजनाये, हल्के तथा गहरे धरातलो की क्रमिक व्यवस्था, क्रमागत लय को प्रस्तुत करती है। पीले तथा नीले रग की ओर, लाल तथा हरे रग की विरोधी संगतियॉ विषमवादि संगति के सयोजन के समान प्रतीत होती है। ठण्डे तथा गर्म रग तथा कोमल तथा तीव्र बलो वाला क्षेत्र लगभग नपे–तुले क्षेत्र मे भरे होने के कारण सन्तुलित होता है। आकृतियो के विवरणों मे जो रेखायें खीची गयी है उनका प्रवाह मन के भावानुसार दिशा मे बनाया गया है तथा एक ही वस्तु की रेखायें अन्यत्र अन्य वस्तुओ की रेखाओ की अनुकूल अंकित होती है। इस प्रकार चित्रों के रेखा प्रवाह में एक सामजस्य उत्पन्न होता है। जहॉ कही ओजमय रेखाओं का प्रयोग हुआ है वहां लय के प्रभाव को अधिक सशक्त रूप से व्यक्त किया गया है।

लय के सम्बन्ध मे फ्रास के चित्रकार रार्बट डिलोने ने आरफ्रिज्म नामक एक चित्रकला अभियान शुरू किया। उसने चित्रफलक पर बिन्दु व पैचेज लगाकर और भँवरदार चक्करो में परस्पर विरोधी रंगों में चित्रण शुरू किया ठीक आतिशबाजी की नाचती चरखी के समान डिलोने इस ढंग से अमूर्त चित्रण करने वाला फ्रास का पहला चित्रकार था। उसने चित्रों में रंगों का संगीत गुंजन करता है। अमेरिकी चित्रकार मार्गन रशेल और सेन्टन मैक्डोनाल्ड ने सेनक्रोनिज्म नामक एक चित्रकला आन्दोलन शुरू किया। वे रंगों की पट्टियों से या लहरों से अनुरंजन करते थे। मौलिक रंगों से चित्रण प्रारम्भ करके माध्यमिक रंगों की ओर क्रमशः बढ़ते जाते थे। इस प्रकार मौलिक और माध्यमिक रंगों के मध्यांतर और विविध स्तरों के उतार उढावों को संगीत स्वरो के समान उत्पन्न करके कलाकृतियों को अतिशय लयात्मक बना दिया।

भारतीय ललित कलाओ में सत्यम् शिवम् एव सुन्दरम् की भावना अर्न्तनिहित होती है। मोक्ष के प्रति प्रतीति भी उसका एक लक्ष्य होता है। कलाकार सर्वाधिक क्रियाशील होकर रचना को पूरा करके इस लक्ष्य को प्राप्त करता है। लय का कला के विकास क्रम मे इतना योगदान है कि उससे कलात्मक धरोहर की प्रगति का रूप मिल जाता है। लय मानव सस्कृतिक का ऐसा अग है जिसने भक्ति देव आधार बना है। कॉगडा चित्रकला मे लय तत्व का अध्ययन मानव कल्याण और देश के हित के लिये योगदान देता है।



अध्य य – 2

काँग़ा चित्रशैली की विषय वस्तु

- धार्मिक चित्र (राधा–कृष्ण आदि)।
- प्राकृतिक (प्रकृति) चित्र (पहाड़, नदी आदि)।
- काँगड़ा का भौगोलिक वातावरण, स्थिति एवं वहाँ का सामान्य जन–जीवन।

कॉँगड़ा चित्रकला की विषय वस्तु

कॉगडा चित्रशैली की विषय वस्तु मुख्य रूप से पौराणिक रही है। पौराणिक कथाओ मे विशेष रूप से राधा कृष्ण को नायक–नायिका के रूप मे तथा राग और रागनियो के रूप मे राधा–कृष्ण के स्वरूप को चित्रित किया गया है।

रामायण, महाभारत, दुर्गासप्तशती, गीत–गोविन्द, श्रीमद् भागवत्, हरिवश पुराण और शिव पुराण की कथाओं पर आधारित चित्र कृष्ण की विविध लीलाओ और शिव पार्वती से सम्बन्धित सभी की पृष्ठभूमि में मानवीय अनुभूतियो के मध्य के सयोग को लौकिक भाव भूमि पर प्रस्तुत किया गया है। कॉगडा की आदर्श प्रधान शैली के मूल मे यथार्थवादी तत्व भी विद्यमान है, किन्तु उसमे जो अभिनव सौन्दर्य की सृष्टि की गयी वही उसकी विशेषता है।[1]

कॉगडा कला मे राधा और कृष्ण को नायक–नायिका मानकर श्रृगार रस में आलम्बन के रूप मे ही ग्रहण किया गया है।[2]

कॉगडा का विषय क्षेत्र बहुत ही विस्तृत भक्ति और श्रृगार प्रधान जीवन का सरस, तरग आकर्षक और रोचक परिचय कॉगडा के चित्रों में मिलता है।

कृष्ण भक्त कवियो की तरह कॉगड़ा कलम के चित्रो ने कृष्ण–लीला को उन्मुक्त हृदय व स्वच्छन्द कल्पना से अपनी तूलिका का विषय बनाया। यह कृष्ण–लीला के अकन में ही संभव था। जहॉ कला उडान भर सकती थी। कृष्ण और गोपी का प्रेम, भक्ति के आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित था ही, चित्रों ने भी उसे सहृदय आत्मसात् किया और कलात्मक अभिव्यक्ति दी। लोक, वेद–शास्त्र, परिवार आदि की मर्यादाऍ गोपियों और कृष्ण के प्रेमपाश के लिये कमजोर साबित हुई और वे सहज और सुरूचिपूर्ण ढ़ग से टूट गई। प्रेम की यह व्यापकता किन्ही वय–बन्धनों

---

[1] किशोरी लाल वैद्य एव ओमचद हाण्डा–पहाडी चित्रकला, 1969,
[2] शचीरानी गुर्ट, भातरीय कला की रूपरेखा, पृ० 197

से ऊपर उठी है– कृष्ण की गोपिकाए, किशोरी, युवती और विवाहिताएँ सभी प्रकार की है। कृष्ण की बहुविध लीलाएँ कवियो की तरह चित्रो के लिए भी अत्यन्त रोचक विषय थी। माखन–लीला, चीर–हरणलीला, दान–लीला, मान–लीला, रास–लीला आदि मे इतने मनमोहक ससार का सृजन हुआ है कि जो भक्तो और रसिको के लिए समान रूप से आकर्षण का विषय है। कृष्ण–काव्य में श्रृंगार की ऐसी रगीनिया निहित रही जिनसे अनुप्रेरित होकर आने वाले कवियो व चित्रो के लिए नायिकाओ और अभिसारिकाओ का काव्यमय वर्णन अथवा चित्रण अकन सहज हो गया। भक्त–कवि अपनी मन स्थिति के अनुकूल कृष्ण के साथ अपने रिश्ते का सफलता से मुखरित करते रहे– कोई कृष्ण को सखा के रूप मे देखता रहा कोई वात्सल्य भाव से, कोई केवल आराध्य के ही रूप में तो कोई पति के रूप मे। जो भी रिश्ता जिसको अपने अत्यधिक निकट भाया, उसी मे कृष्ण का स्मरण व स्तुति हुई। कॉगडा चित्रो ने भक्त कवियो के विभिन्न वेदों का स्मरण कर अपनी कल्पना, आस्था और विश्वास का सम्बल लेकर सुन्दर चित्रों का सृजन कर डाला। राजाओं का विलासपूर्ण जीवन तो कला के उन्नयन मे अधिक सहायक न हो सकता था लेकिन कृष्ण लीला ने उनकी कल्पना को सहेजा, उनकी आस्था को गहराया और उनके कलात्मक मानस को अनुप्राणित व अनुप्रेरित किया।

कॉगडा के चित्रों मे एक व्यापक विषयगत अनुरूपता ढूढंनी हो तो वह भारतीय जन–जीवन के सर्वाधिक प्रतिष्ठित व आराध्य नायक कृष्ण हैं। श्री कृष्ण सम्बन्धी भावना की उत्पत्ति चौथी शताब्दी ईसा–पूर्व हो चुकी थी। विकासगत अनुशीलन पर कृष्ण का परिचय सबसे पहले नारायण और उसके बाद क्रमशः वासुदेव, विष्णु और गोपाल कृष्ण के रूप में मिलता है। श्रीकृष्ण के चरित्र का अंकन महर्षि व्यास ने महाभारत, भागवत, हरिवंशपुराण आदि काव्यों में किया है। महाभारत में श्री कृष्ण के साथ राधा की चर्चा नहीं। भागवत पुराण में कृष्ण की बाल लीला का वर्णन तो है, उसमें गोपियाँ भी है, लेकिन राधा के नाम से वहाँ कोई परिचय

नही मिलता। एक विशिष्ट गोपी का वर्णन आता है जिसे श्री कृष्ण के साथ एकान्त मे विचरण करने का सौभाग्य प्राप्त है लेकिन उसका नाम नही दिया गया है इस गोपी की अन्य गोपियो मे पर्याप्त चर्चा है। वे सोचती है कि यह अपने पूर्व जन्म मे श्री कृष्ण की आराधना मे रत रही होगी, तभी तो उन्हें इतनी प्रिय है।

'भागवत पुराण' के आधार पर सबसे प्रथम माध्व–सम्प्रदाय का परिचय मिलता है। इसमे कृष्ण की उपासना पर बल दिया गया है।

माध्व–सम्प्रदाय के बाद हमे विष्णु स्वामी और निम्बार्क सम्प्रदाय का परिचय मिलता है। जिनमे राधा का निर्देश है। ऐसा लगता है 'भागवत पुराण' मे जिस विशेष गोपी का वर्णन मे यह कहा गया कि उसने पूर्व जन्म मे श्री कृष्ण की आराधना की है, उसी को बाद मे राधा माना जाने लगा–"अराधना" शब्द से राधा की उत्पत्ति समझ मे आती है। 'राध' धातु का अर्थ सेवा करना या प्रसन्न करना है। राधा के नाम से सबसे पहले परिचय 'गोपाल–तापनी उपनिषद्' मे उपलब्ध है।

जयदेव लिखित 'गीत–गोविन्द' मे राधा और कृष्ण की प्रणय–लीला का वर्णन है। इसमे राधा–प्रधान गोपिका है। कृष्ण–लीला–गान की प्रथा यू तो गीत–गोविन्द से पहले भी थी लेकिन पहाडी कला का सबसे प्रमुख आधार इसी संस्कृत काव्य को माना जाता है। जयदेव के पश्चात मिथिला के विद्यापति और बंगाल के चण्डीदास नामक दो कवि ऐसे हुए जिन्होने लोक–भाषा में कृष्ण–लीला का गेय–पदो में बखान किया। कृष्ण–लीला गान की परम्परा पूर्वी भारत से पश्चिमी भारत में पहुँची।

एक प्रबुद्ध स्तर पर कृष्ण आत्मा है और राधा उनकी काया और संयुक्त रूप में ही उनका रूप पूर्ण है– भक्त लोग राधा–कृष्ण दोनों को संयुक्त रूप से मान्यता देकर उन्हें भगवान का पूर्ण रूप मानते है। इसी रूप से राधा को आधा भी कहा गया है।[1]

---

[1] वाचस्पति गैरोला भारतीय चित्रकला, पृष्ठ 5

राधा की विरह–वेदना, कॉगडा–कलम के चित्रकारो का विषय है। गीत–गोविन्द' सम्बन्धी कॉगडा–कलम के चित्रो को देखने से पता चलता है कि चित्रकारो ने उस वेदना को अपनी कला के माध्यम से बडी ही सूक्ष्म व हृदय स्पर्शी अभिव्यक्ति दी है। जहॉ 'गीत–गोविन्द' के शब्द चित्र अपने भाव–प्रेषण मे अचूक है, वहॉ गीत–गोविन्द सम्बन्धी कॉगडा–कलम के नयनाभिराम और हृदयग्राही चित्रों की पहुॅच भाषा की सीमाओ व बन्धनो से ऊपर उठकर सभी रसिक व्यक्तियो तक है।

'गीत–गोविन्द' के सचित्र व ललित लिपियुक्त सस्करण तैयार करने की परम्परा का आरम्भ पन्द्रहवी शताब्दी की पश्चिमी जैन शैली से ही हो गया था। जो राजस्थानी और पहाडी चित्रशैली मे भी जीवित रही। पहाडी चित्रशैली मे 'गीत–गोविन्द' सम्बन्धी चित्र अपने भरे–पूरे आकर्षण व सजीवता के साथ उभरे है।[1]

पहाडी चित्रकला मे 'गीत–गोविन्द' विषयक चित्र दो शैलियो मे देखे जा सकते है– बसोहली और कॉगडा। दोनों शैलियो मे बसौली प्रचीनतम् है। बसोहली शैली के ये चित्र डब्ल्यू०जी० आर्चर के अनुसार 1730 ई० में मानक द्वारा बनाये गये।[2] इसके अतिरिक्त मालिनी का नाम आता है जिसके सम्बन्ध मे विद्धानो के विभिन्न मत है। एक मत के अनुसार ये चित्र रानी मालिनी की प्रेरणा से बने।

बसोहली शैली और कॉगडा शैली मे बने 'गीत–गोविन्द' विषयक चित्रो मे बहुत अन्तर नजर आता है। दोनो में अपनी शैलीगत विशेषता है लेकिन कॉगड़ा शैली के चित्र अपेक्षातया अधिक सुन्दर और संतुलित है।

कॉगडा शैली मे गीत–गोविन्द विषयक चित्रों को ध्यान से देखने पर कुछ विविधता दिखने में लगती है जिससे ऐसा लगता है कि गीत–गोविन्द के विभिन्न चित्र केवल एक ही चित्रकार के नहीं अनेक चित्रकारों के हाथों गुजरे है। यह विविधता आकृति–अंकन, रंग–चयन आदि से स्पष्ट हो जाती है। काई आकृति छोटी

---

[1] एम० रधावा, कॉगडा पेन्टिग आन लव, पृ० 21

[2] कार्लचाण्डेवाल, पहाडी मिनियेचर्स पेन्टिग, पृ० 49

नजर आती है और कही लम्बी मुकुट का अकन भी अलग–अलग ढंग से हुआ है। लगता है विभिन्न चित्रकारो का अपना–अपना कला बोध है और कुछ अपनी–अपनी शिल्पगत विशेषताएँ भी।

धार्मिक चित्र

कृष्ण का जीवन भारत के सरल, साधारण लोक जीवन से अत्यधिक सन्निकट है। इसी कारण कृष्ण भारतवर्ष मे बहुत प्रिय देवता माने जाते है वास्तव मे कृष्ण का उद्दण्डतापूर्ण बालकाल और यौवन का जीवन कृषको जगलो, ग्वालो, गोपियों और पक्षियो से सम्बन्धित था और गरीब जनता से बहुत मिलता–जुलता था। वैष्णव धर्म राजस्थान तथा उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्र तक ही सीमित न रहा बल्कि पहाडी क्षेत्रो मे भी पहुँच गया और पहाडी चित्रकार की प्रेरणा का मुख्य आधार बना।

बसोहली शैली के चित्रो मे वैष्ण धर्म की विचारधारा और भक्ति भावना दिखाई पडती है। इस शैली मे चित्रित रामायण की दो प्रतियाँ भी प्राप्त है, जिनमे से एक प्रति बसोहली में चित्रित की गई है और दूसरी कुल्लू में चित्रित की गयी है। रामायण तथा भागवत पुराण वैष्णव सम्प्रदाय के कारण इन चित्रकारों का प्रमुख चित्र विषय बने।

काव्य तथा रागमाला

चौदहवीं शताब्दी मे भानुदत्त कृत 'रस मजरी' बसोहली के राजा कृपालपाल का प्रिय काव्य ग्रन्थ था। इस ग्रन्थ में नायक–नायिका भेद, रस तथा श्रृंगार का सुन्दर वर्णन है, परन्तु कृष्ण का वर्णन नही है। सम्भवतः राजा कृपालपाल ने ही अपने चित्रकारो से रसमंजरी के चित्रों में कृष्ण को आदर्श प्रेमी का रूप दिलाया हो। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की नायिकायें जैसे उल्का तथा अभिसारिका आदि का आरम्भिक चित्रकारों के चित्र विषय बनीं।

रसमंजरी के अतिरिक्त बारहवीं शताब्दी की जयदेव कृत गीत गोविन्द काव्य

रचना पर भी सुन्दर चित्र बनाये गये। परवर्ती चित्रकारो ने 'बारह–मासा' चित्रावलियो के निर्माण मे विशेष रूचि प्रदर्शित की। इन विषयों के अतिरिक्त बसोहली शैली मे रागमाला पर आधारित चित्र भी प्राप्त होते है जिसके उदाहरण भारत कला भवन काशी मे सग्रहीत है। इन रागमाला चित्रो तथा बारहमासा चित्रो में कृष्ण और राधा को नायक तथा नायिका का रूप प्रदान किया गया है।

व्यक्ति चित्र

चित्रकार प्राय दरबार का एक सदस्य होता था और इस कारण उसका प्रमुख उद्देश्य राजाओ, दरबारियो कथा दरबार के अन्य सम्मानित सदस्यों जैसे विद्वान, सगीतज्ञ, सन्त आदि के चित्र बनाना था। इस प्रकार बसोहली मे चित्रकार ने समसामयिक इतिहास को अमर बना दिया हैं।

मानवात्मा

चित्रकार ने राधा और कृष्ण के प्रेम मे मनुष्य की हृदयगत भावनाओ को बडे मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। जिस प्रकार कृष्ण के विरह में गोपियॉ व्याकुल है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा भी परमात्मा (कृष्ण) के सयोग के लिए व्याकुल है। इस प्रकार बसोहली शैली के चित्रो में रहस्यात्मकता का मधुर सयोग है।

कॉगडा चित्र शैली के चित्रों का विषय

कॉगडा के राजा संसारचन्द की वैष्णव सम्प्रदाय की और विशेष रूचि होने के कारण भक्ति–काव्य और रीति काव्य की धारा को दरबारी सरक्षण प्राप्त हुआ है।

धार्मिक चित्र

कृष्ण के प्रेम और श्रृगार की भावना कलाकारो के लिए एक मुख्य प्रेरणा थी। कृष्ण को प्रतीक मानकर सासारिक तथा श्रृगारिक लीलाओ को अकित किया गया। अधिकाश धार्मिक महाकाव्यों पर आधारित प्रेम–कथाओ को चित्रो में प्रधानत चित्रित किया गया– जिसमें रामायण, महाभारत, हमीरहठ, नल–दमयन्ती, शिव तथा पार्वती की पौराणिक कथाओ को विशेष महत्व प्राप्त हुआ।[1] इन महाकाव्यो को एक नवीन चित्रमय जीवन प्राप्त हुआ और बिहारी तथा महाकवि केशवदास की रचनाओं को भी चित्रबद्ध किया गया।

गायिका भेद

जिस प्रकार मध्यकालीन काव्य मे श्रृगार की सूक्ष्य से सूक्ष्म प्रवृत्ति का विवेचन किया गया है उसी प्रकार कॉगडा शैली के चित्रकारो ने श्रृगार की मनोरजक और भावपूर्ण दशा की सजीव, चित्रमय झांकिया प्रस्तुत की है। कॉगडा शैली के चित्रकारो ने तीनो प्रकार की नायिकाओ (1) स्वकीया (स्वयं की), (2) परकीया (दूसरे की), (3) सामान्य (किसी की भी) का अंकन किया है।[2]

कॉगडा चित्रकला मे धार्मिक ग्रन्थ विशेष रूप से चित्रित है ·–

जयदेव लिखित 'गीत–गोविन्द', बिहारी लिखित– 'बिहारी सतसई' भागवत पुराण, रामायण, महाभारत, बारहमासा और रागमाला। कृष्ण–लीला और नायक–नायिका सम्बन्धी चित्र विशेष रूप से अपना महत्व रखते है। लेकिन उनके अतिरिक्त नल–दमयंती और सत्यवान–सावित्री जैसी कथाओं को भी पहाडी कलाकारों ने चित्रित किया है।[3]

नल–दमयन्ती सम्बन्धी रेखाचित्रों की एक चित्रावलि पहली बार कुमारस्वामी

---

1 डॉ० अविनाश बहादुर वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास, 1987, पृ० 231

2 डॉ० रघुनन्दन प्रसाद तिवारी, भारतीय चित्रकला पृ० 291

3 किशोरी लाल वैद्य, पहाडी चित्रकला, पृ०, 31–32

ने प्रकाशित की थी। रामायण सम्बन्धी चित्र आकार मे अन्य चित्रो की अपेक्षा बडे है और उनमे आकृतियों के अतिरिक्त वनस्थलियो का चित्रण भी बडे मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

कॉगडा चित्रकला का विषय विस्तृत रहा है मध्यकालीन भक्ति और श्रृगार प्रधान जीवन इतना सरस, अतरग, आकर्षण और रोचक परिचय कॉगडा चित्रो मे मिलता है कि जिन्हे देखकर आश्चर्य होता है। उसमे जहॉ संस्कृत और हिन्दी कवियो की कृतियो को लेकर चित्र बने वही लोककथा सम्बन्धी चित्र भी कई संग्रहो मे उपलब्ध है। जिनमे हमीरहठ, विक्रम–वेताल चरित्र, माधवानल–कामंदला, सोनी–महिवाल विशेष रूप से गण्य है। भागवत के दशम स्कन्ध मे कृष्ण के बाल्य और यौवन का बहुत ही मनोहारी और उन्मुक्त वर्णन मिलता है। जिसका चित्रण कॉगडा चित्रशैली मे सहस्त्रो चित्रों मे मिलता है। कृष्ण–लीला मे गोचारण, बशी की मोहिनी तान, कालिय–दमन, गोवर्धन–धारण, दान–लीला आदि के अनेक चित्र है। भोजन, वसन, श्रृगार, ताम्बूल, वितरण, आखेट, नौका–विहार, वनवाटिका–विहार जैसे कितनी ही क्रीडाएँ और प्रणय–प्रसंग है जिसका कॉगडा चित्रकारों के लिए अदम्य आकर्षण रहा है। राधा और कृष्ण को लक्ष्य बनाकर जीवन की इतनी बहुविध लीलाओ का आलेखन हुआ है कि लगता है जीवन का शायद ही कोई पक्ष छूटा हो।

नायक–नायिकाओं सम्बन्धित केशवदास की कल्पना को सोचा और उसे समर्थ अभिव्यक्ति मिली। कॉगड़ा कलाकारों के हाथ नायिकाओ को चित्रित करने में तो समर्थ प्रतीत ही हैं, उन्होंने भारतीय जीवन की प्रतिष्ठित पार्वती, ऊषा, दमयन्ती आदि के अकन में श्रद्धा और कला के समन्वय की उच्चतम् उपलब्धि दी है। श्रद्धामयी व आदर्श नारियों के चित्रण में कॉगडा घाटी की ही सुन्दर युवतियां अपने सौन्दर्य व सजीवता में प्रतिबिम्बित होती आयी है।

प्रेम और श्रृंगार, संयोग और वियोग की स्थितियों और परिस्थितियो में उभरती–उतरती नारी के सौन्दर्य का अंकन कॉगडा चित्रकला का ध्रुव–बिन्दु है।

ऐसी ही नारी के इर्द–गिर्द हजारो की संख्या मे बिखरे चित्रो का जाल हुआ है। दूसरे शब्दो मे नारी का अष्ट्याम और बारहमासी जीवन ही कॉगडा चित्रशैली का ताना–बाना है।

प्राकृतिक या प्रकृति से सम्बन्धित कॉगडा शैली के चित्रो मे वृक्ष बादल, जंगल और प्रकृति चित्रों में अभिनव नायिका सौन्दर्य विद्यमान है।

प्राकृतिक वातावरण के दृश्यो के संयोजन से कॉगडा के चित्रकारो ने अद्‌भुत चित्रावली प्रस्तुत की है। विविध ऋतुओ (बारहमासा) के अंकन मे फलो से लदे वृक्षो, झाडियो आदि से शस्य–श्यामतल मैदान अकित किये गये है। सरोवर मे कमल पुष्प तथा कुमुद पुष्पों से युक्त बनाया गया है। जल लहरदार रेखाओ के द्वारा दिखाया गया है।[1]

पशु–पक्षियो का बडा भावपूर्ण चित्रण कॉगड़ा के चित्रो मे मिलता है। वर्षा मे बगुला, विरह मे सारस या मोर आदि को मानव भावना के अनुकूल चित्रित किया गया है। कृष्ण के सग–गायो का सजीव चित्रण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[2]

पहाडी चित्रों की पीठिका मे जहॉ प्रकृति का अंकन हुआ है वहां भी अग्रभूमि में व्यक्त पात्रो के क्रिया–कलापों के समर्थन मे अनेक प्रतीक ढूंढे जा सकते है। क्योंकि इन चित्रो में प्रेम ही मुख्य विषय है। इसलिए प्रेम के अनुराग और विराग के अनेक गीत गाने वाला पपीहा सामान्यतः नजर आया है। पपीहा–युगल कृष्ण और राधा के सम्बन्ध को मुखरित करता हैं। कलाकार ने इन पक्षियों को चित्रित करने मे अत्यन्त सूझ–बूझ से काम लिया है। यदि नायक और नायिका अथवा कृष्ण और राधा आमने–सामने होने पर भी किसी दूरी को महसूस कर रहे हैं तो यह पक्षी–युगल भी ऐसी ही किसी स्थिति में होगा। यदि वे आपस में मिलकर बैठे हैं तो पपीहा युगल भी एक–दूसरे से मिलकर बैठा होगा। ऐसी ही प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति

---

1 किशोरी लाल वैद्य, पहाडी चित्रकला, पृ०, 53,54

2 डॉ० रामकुमार विश्वकर्मा, भारतीय चित्राकन, पृ०, 102

सारस युगल, तोता–मैना, चकोर–चकोरी, मोर–मोरनी, बैल–गाय, अकन मे सुरूचि देखी जा सकती है यदि कृष्ण और राधा एक दूसरे से रूठकर एक दूसरे से पीठकर बैठे है तो उन्ही के समर्थन मे गाय और बैल को भी देखा जा सकता है।

पेड और पौधे के अंकन मे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति अत्यन्त रूचिकर है। केले का पौधा अथवा नायिका के मासल सौन्दर्य का प्रतीक है जो पहाडी चित्रों मे सहज ही देखने को मिलेगा। केले का तना कुमार अथवा नायिका की जंघा के समान है। राधा अथवा नायिका के बालों की उपमा सहज सरोवर अथवा नदी की लहरो में देखी जा सकती है। राधा ही के सौन्दर्य को प्रतिबिम्बित करता हुआ कचनार का पौधा है जो गुलाबी फूलो से लदा हुआ है। सरपत अथवा सरई के पेड पहाडो में साधारण रूप से 'मजनू' पेड के नाम से भी जाने गये है। आम, जामुन, बड, सुरू, सेमल, तेजपात आदि के पेड प्राकृति सौन्दर्य में तो योग देते ही है लेकिन उसके अतिरिक्त कही–कहीं नायक कृष्ण की भूमिका का भी समर्थन करते है। मेघो का उमडना, बिजली का कडकना और वर्षा की फुहार पात्रों की भूमिका को अधिक सार्थक बना देते है। बादलो का उमडना, बिजली का कडकना और वर्षा की फुहार पात्रों की भूमिका को अधिक सार्थक बना देते हैं। बादलों का उमडना नायिका के हृदय मे प्रेम की भावनाओं की ओर सकेत करता है। बिजली का कडकना, भावावेगों से उद्वेलित संघर्ष के समान है और जब भावावेग को हृदय समाने में असमर्थ हो जाता है तो वह फूट पडता है– नायिका की ऑखों की राह वर्षा की फुहार किन्हीं अर्थो मे इस बात की सूचक भी है। बिजली का कडकना और बादलों का बरसना नायक–नायिका के क्रिया–कलापो में प्रणयोन्माद और संसर्ग के संकेत है।[1]

---

[1] किशोरी लाल वैद्य, पहाडी चित्रकला, पृ०, 136.

प्रकृति चित्र

बसोहली शैली के चित्रो मे आलकारिक ढग से दृश्य चित्रण किया गया है और अधिकाश चित्रो मे क्षितिज रेखा को बहुत ऊपर रक्खा गया है। वृक्षो की पक्तियॉ अलग–अलग आलकारिक योजना मे गहरी पृष्ठभूमि पर सफेद मिश्रित रग से बनाई गई है। अधिकाश मंजनू, आम, अखरोट तथा मोरपंखी के वृक्ष बनाये गये हैं।

वर्षा तथा बादल

बसोहली शैली की कृतियो मे बादलो को झीना–झीना वक्रकार अभिप्रायो के द्वारा बनाया गया है। रसमजरी के चित्रों में गहरे बादल बनाये गये है और इन बादलो मे नागिन के समान चमकती हुई दामिनी की चमक दिखाई गई है। दामिनी की चमक को सोने के रगो से दिखाया गया है। हल्की वर्षा का प्रयोग किया है, परन्तु मूसलाधार वर्षा के लिए सीधी रेखाओ से जल–वृष्टि अंकित की गई है। नदी, झील या तालाब मे पानी की लहरे बनाने के लिए कुंडलाकार रेखाओं के अभिप्रायों का प्रयोग किया गया है। जल में कमल पुष्पो का अंकन किया गया है और कभी–कभी बगुले भी बनाये गये है जिससे जल का किनारा और अधिक सुन्दर बन गया है।

कॉगडा के चित्रो मे प्रकृति के प्रति एक गहन प्रेम प्रदर्शित किया गया है। प्राय· चित्रो की पृष्ठभूमि का मनोरम प्राकृतिक दृश्यों से संजोया गया है। जिसमे व्यास नदी के क्षेत्र की भव्य वनस्पति और प्राकृतिक छटा विद्यमान है। पहले उद्धृत किया जा चुका है कि विभिन्न ऋतुओं का अंकन इन दृश्यों में किया गया, जिनमें अनेक पुष्पित वृक्ष, झाडियो तथा घास के शस्य–श्यामल मैदान अंकित किये गये हैं, तथापि कभी–कभी राजपूत–शैली के समान ही सफेद रंग के मिश्रण से बने हल्के रंग से गहरी पृष्ठभूमि के ऊपर पुष्प और पत्तियों को सुन्दर आलेखन की योजना में बद्ध किया गया है।

प्राय पीपल, वट, बास, आम, जामुन, मजनू, केला, गुलमोहर, शीशम, ढाक तथा पलाश आदि वृक्षो को चित्रित किया गया है। प्रेमी और प्रेमिकाओ की सयोगवस्था मे वृक्ष से लिपटी पुष्पित लतिकाओ को सयोग के प्रतीक स्वरूप अकित किया गया है। तालाबो को कमल तथा कुमुद पुष्पो से युक्त अंकित किया गया है। नदी मे जल का प्रवाह प्रदर्शित करने के लिए लहरदार या वक्रीय रेखाओ को बारीकी तथा कोमलता से बनाया गया है।

प्रकृति

चम्बा के चित्रों मे पर्वतो, सरिताओं, काले मेघो नीले–आकाश, वन उपवनो, उद्यानो तथा बाटिकाओ का मनोहारी अकन है। वृक्षो में मोरपख, मंजनू, आम, केला, बरगद, कदम्ब, पीपल, ऑवला आदि का सजीव अकन है। इन वृक्षो के पत्तो को कलाकार ने अधिकाश हल्की पृष्ठभूमि पर गहरी रेखाओ से अलकारिक ढग से बनाया है। वृक्षों को पुष्पित बनाया गया है।

कॉगडा शैली के चित्रो मे प्रकृति का अलंकारिक रूप भी चित्रित किया गया है। वृक्षो को आलकारिक योजना में बनाने के लिये एक–एक पत्ते को स्पष्टतया सफेद रग से युक्त हल्के या अन्य किसी उपयुक्त रग से गहरी पृष्टिका पर बनाया गया है और उनको आलेखन से सजाया गया है। वृक्षो को अधिकांश झुन्डों में बनाया गया है, पत्तों के बीच–बीच पुष्पों के गुच्छे अंकित किये गये है। परन्तु मुगल प्रभाव के कारण किसी–किसी स्थान पर चट्टान में यर्थाथता भी दिखाई पडती है। प्रायः वृक्षों को पुष्पित बनाया गया है और पुष्पित पौधे भी बनाये गये है। पर्वत तथा चट्टानों में मुगल प्रभाव दिखायी पडने लगता है। जल को लहरदार रेखाओं और टोकरी जैसी बुनाई के रेखाकन के ढंग से बनाया गया है।[1]

प्राकृतिक चित्र

पहाड़ी चित्रकारों ने इस सुख की तुलना नायक–नायिका मिलन या

---

[1] डॉ० अविनाश बहादुर वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास, 1987,, पृ० 248

राधा–कृष्ण के सयोग से की है। इसमे भाव को चित्रित करने के लिये चित्रकारो ने प्रकृति का सहारा लिया है। खिले हुए कमल, झील नदी का किनारा, बिजली, बादल, सतरगी धनुष के रग, फलो से लदे पेड, लताये वन और कुन्ज जिन पर मोर, तोते, बन्दर तथा सारस प्राकृतिक ढग से कृष्ण व राधा को पहले नयन–बाणो से घायल करते है, फिर स्पर्शकर उत्तेजित करते हैं।

कॉगडा चित्रकला तो सम्पूर्ण हिमालय ही अपनी छटा में अद्वितीय है, उसका प्राकृतिक सौन्दर्य सर्वविदित है। प्रकृति ने मुक्त हस्त होकर अपनी अनुपम छटा यहॉ फैली है। कलकल निनाद करती हुई नदियॉ और झरने, घने देवदारू व चीड के वनो से ढॅकी पर्वत श्रृख्यलाए और हिमाच्छदित चोटिया यहॉ के प्राकृतिक सौन्दर्य के महत्वपूर्ण अवयव विविध फूल और फलो से सम्पन्न, सुन्दर पशु और पक्षियों से भरी हुई हिमालय की यह घाटी कलाकारों के लिए उपयुक्त और बडा ही मनोहारी वातावरण प्रस्तुत हुआ है। अतः मुगलराज्य का प्रश्रय खोने के बाद भटकते हुए चितेरे एक बार जो यहॉ रूके तो फिर यहीं के हो गये थे। इन चित्रकारों ने इस मनोहारी प्रकृति का अपने चित्रो के लिए न केवल पृष्ठभूमि के रूप में चयन किया बल्कि विषयवस्तु के रूप में भी। पहाडी कलाकृतियों में मेघमालाएँ और उसमे तेजी से दौडती हुई विद्युत प्रभा, पहाड जंगल बक्र–पक्तियो, विभिन्न पशु–पक्षी जैसे मयूर, सारस, चकोर, पपीहा, तोता, पेंडुकी आदि और वनश्री का चित्रण इतनी सूक्ष्मता और सुन्दरता से हुआ है कि कलाकार के हाथों को देखते ही बनता हैं कॉगडा चित्रों मे उन्हीं पेड–पौधों का अंकन हुआ है जो वस्तुतः इस क्षेत्र मे पाए जाते हैं और फिर मौसम के अनुकूल ही पेड–पौधों और पशु–पक्षियों का चित्रण हुआ है।[1]

कॉँगडा चित्रकला मे प्रकृति और पुरूष के मिलन की भावना को चित्रकार ने नायक–नायिका के रूप में कृष्ण–राधा मिलन की संज्ञा दी है। चित्रकारो के सरक्षक राजाओं ने अपने को कृष्णदास, नागरीदास, राधाजी का दास और अपने राज्य को ब्रजधाम कहा है।

---

[1] किशोरी लाल वैद्य, पहाडी चित्रकला, पृ० 23

चित्रकारो ने भी इन्ही वैष्णव विषयो का चित्रण किया जब मानव की आत्मा सासारिक मायामोह को तजकर भक्ति प्रेम के सहारे उस अदृश्य परमेश्वर से मिलती है, उसे परमसुख मिलता है उस सासारिक आवागमन के दु खो से मुक्त हो जाती है और सच्चिदानन्द को प्राप्त करती है। यह वैष्णव धर्म का मूलमन्त्र है। पहाडी चित्रकारो ने इस सुख की तुलना नायक–नायिका मिलन या राधा–कृष्ण के संयोग मिलन से की है। इसमे भाव को चित्रित करने के लिए चित्रकारो ने प्रकृति का सहारा लिया है। खिले हुए कमल, झील नदी का किनारा, बिजली, बादल सतरंगी धनुष के रग, फूलो से लदे पेड, लताये वन और कुन्ज जिन पर मोर, तोते, बन्दर तथा सारस प्राकृतिक ढंग से कृष्ण व राधा को पहले नयन–बाणो से घायल करते है, फिर स्पर्श कर उत्तेजित करते हैं। नायिका या नायक को हाथ मे कमल का फूल लिये कुन्ज मे मिलन की अवस्था में आनन्द करते हुए दिखाया गया है। वियोग में व्यथित नायिका दु:खी मन से पेडो और पक्षियो से अपने मन की व्यथा कहती है और सहायता की याचना करती है। सूनी सेज पर पडी अकेली नायिका, नायक की प्रतिक्षा कर उसे ताडना देती है।

कॉगडा चित्रकला मे आदर्श हिन्दूजीवन की पौराणिक परम्परा और राजपूती वीरता तथा सस्कृति का समावेश है तो मुगल शैली में मुस्लिम संस्कृति का प्राचुर्य मुगल कला के ह्रास के कारण पहाड़ी राजपूत राज्यों मे मुगल दरबार से विच्छिन्न कलाकारों ने आश्रय लिया। वहां के वातावरण के प्रभाव में जो चित्र बने उनमें पहाडी कला की विकृति हुयी। पहाडी चित्रकार ने भावांकन एवं चित्रांकन की दृष्टि से अपनी पूर्ववर्ती कॉगडा लीलाओं का आधार बनाकर पहाड़ी शैली में अंकन हुआ है।

कॉगडा राज्य में राजा संसार चन्द्र (सन् 1775–1823 ई०) द्वितीय के समय मे प्रतिभा सम्पन्न अनेक कलाकार–चित्रकार कार्यरत थे। इनके समय में जयदेव का गीत–गोविन्द, बिहारी सतसई, भागवत पुराण, नल दमयन्ती की कथा आचार्य केशवदास की रसिकप्रिया आदि का चित्र विद्या में अति सुन्दर ढ़ंग से चित्रण हुआ है।

नादिर शाह दुर्रानी (सन् 1739 ई०) और अब्दुल शाह अब्दाली (1742 ई०) के इन दो आक्रमणों व्याघात को दिल्ली और दिल्ली के इर्द–गिर्द के राजा रईस सहन न कर सके। फलत उनके रग और रजनो के साधन टूट–टूट कर बिखर गए। उनके चित्रकार भी बिखर गये। इन चित्रकारो की जमाते, कॉगडा घाटी की और पहाडी राजपूत राजाओ के यहॉ आश्रय के हेतु पहुॅची, जिन्हे यहॉ की सुन्दर घाटियो, नदी, पहाड, पर्वत आदि के साथ हिन्दू कथाओ के आधार पर चित्र रचना की दिशा मिली। बर्फीली चोटियॉ, छनता हुआ पानी, गिरता, खिलता तृण पर ओश बिन्दू का सौन्दर्य इन आयातित चित्रकारों का हुआ। इनके पहले भी चित्रकारी का प्रचार था, किन्तु राजा गोवर्धन दास के समय में यह व्यापक रूप से विकसित हुआ।[1]

चित्रो की विषय–वस्तु, रागमाला, नायक–नायिका भेद, बारहमासा ऋतुमास कृष्णलीलादि प्रमुख रूप से चित्रित हुई है। नायिका–भेद का मूल आधार राधा कृष्ण ही है किन्तु ये राधा कृष्ण देव कोटि के न होकर सामान्य जन से प्रतीयमान है। इन चित्रो में विस्तार के लिए कल्पना का महत्व योग चित्रकारों ने भव्य रूप से प्रस्तुत किया है। चटकीले रंगो मे एक–एक अग को विशेष रूप से सजा कर विविध विधा में चित्र का मनोरम वातावरण तैयार किया है। रागमाला का चित्रण यहॉ के चित्रकारो का प्रिय विषय रहा है क्योंकि इसके चित्रण की परम्परा निरन्तर बनी रही है। यहॉ के चित्रों में काम का स्वर सबल है। रामायण के चित्रों मे शालीनता वर्ती है। भागवत के चित्रण मे भी यही स्वरूप है। बारहमासा और लैला–मजनू के चित्रों में भावो की मार्मिक अभिव्यंजना रंग विधा की अपनी वस्तु है।

कॉगडा राज्य में राजा ससार चन्द्र (सन् 1775–1823 ई०) द्वितीय के समय में, प्रतिभासम्पन्न अनेक कलाकार चित्रकार कार्यरत थे। इनके समय में जयदेव का गीत–गोविन्द, बिहारी सत–सई, भागवत पुराग, नल दमयन्ती की कथा, आचार्य केशवदास की रसिक प्रिया, आदि का चित्रविधा में अति सुन्दर ढंग से चित्रण हुआ है।

---

[1] डॉ० रामकुमार विश्वकर्मा, भारतीय चित्राकन, पृ०, 145

कॉगडा के चित्रो मे राग–रागनियो के चित्र कम मिलते है। नायक–नायिका भेद, बारहमासा, षटऋतु का श्रृगार परक चित्रण भी मिलता है। कॉगडा मे श्रृगारिक प्रेम की अभिव्यक्ति ईश्वरीय प्रेम से लेकर, सामान्य भोग जन्य वासनासिक्त प्रेम तक यहॉ के चित्रो मे अभिव्यक्ति हुई है।

आचार्य केशव दास की कृतियों मे कवि प्रिया, रसिक प्रिया और विज्ञान गीता का चित्रण हुआ है। केशवदास ने कवि प्रिया, रायप्रवीन नर्तकी के हेतु सृजित की थी, जिसका विषय और वर्णित रूप कॉगडा के चित्रकारों को रूचिकर रहे है। कवि प्रिया के साथ ही रसिक प्रिया और विज्ञान गीता का भी कॉगडा के चित्रकारो के चित्र का आधार हुए है। केशव दास की चित्रकारो मे बढती हुई ख्याति ने, इन चित्रकारों की रामचन्द्रिका की रामकथा पर आधारित चित्र बनाने को प्रेरित किया है।

बिहारी की सतसई मे वर्णित नायिकाओ का रूप और उनकी दशाओ के प्रति यहॉ के चित्रकार आकर्षित हुए हैं और इन्होंने प्राय संपूर्ण सतसई का चित्रण किया है। सूरसागर के पदों का चित्रण राजा ससार चन्द के दरबार मे अधिक हुआ है। सूरदास, केशवदास, बिहारी आदि कवियो ने मानव जीवन के समस्त व्यापारो की सूक्ष्मता, उम्र, अनुभव, शारीरिक, मानसिक हलचल, स्थिति, दशा और धारणाओ में व्यक्त करती है। सूरादि के पद, शब्द, विद्या गत सौन्दर्य के बोध के साथ ही सांगीतिकता को भी भरपूर पुष्ट और सौष्ठव रूप में व्यक्त करते हैं, एक–एक शब्द विषयगत बिम्ब के अवयवों को व्यक्त करता हुआ, सम्पूर्ण बिम्ब का रंगमय बोध कराता है। चित्रो के विषयों में बिछुडते हुए प्रेमी, विरह की वेदना, ठोस, उसकी दशो–दशाएँ, और फिर मिलन, मिलन का सुख, विविध रूपों में जैसा कि काव्य विधा में आया है उससे भी कहीं अधिक साकार रूपों मे अनेक आकृतियों मे चित्रकला के माध्यम से तात्कालिक चित्रकारों ने प्रस्तुत किया है। इसमें काव्यगत व्यक्त संगीतिक परिवेश का भी चित्रकारों ने ध्यान रखा है। कुछ स्वतंत्र चित्रों का तो राग–रागनियों के सबोधनों के माध्यम से सीधा सांगीतिक परिवेश ही आधार रहा है। इसके

अतिरिक्त रसो की अभिव्यक्ति पूर्ण परिपक्वता का भी सुचारू से नियोजन है। रग–रसो की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुए है। राधा–कृष्ण के चित्रण के सन्दर्भ मे यहॉ के चित्रकारो ने केवल सूरदास को ही अपना आधार नही बनाया है अधिकतर इनका आधार भागवद्पुराण रहा है।

भागवत पुराण मे कृष्ण की कथा है। श्रीकृष्ण के प्रणय कथा का काव्य मे विकास भारतीय साहित्य के अनुकूल कालिदास आदि कवियों की श्रृगारिक परम्परा मे हुआ है। गीत–गोविन्द में राधा–कृष्ण की श्रृगार भावनाओ का प्रकाशन है। विधापति मे भी इसी परम्परा को शकर पार्वती के माध्यम से प्रश्रय मिला हुआ है। सूर–तुलसी के काव्य मे औचित्य और मर्यादा का पालन हुआ है, भले ही कही–कही आध्यात्म आवृत प्रस्तुत हुआ है। रीतिकालीन कवियों में राधा–कृष्ण ही प्रधान रूप से रहे है। राजदरबारो मे, राजाश्रयी कलाओ मे, उन्मुक्त श्रृंगार की धारा में प्रस्तुत हुए है, किन्तु ये सभी ललित कलाऍ एक दूसरे से अपना सबंध स्थापित किए हुए व्यक्त हुई है। कृष्ण के प्रणय के मूल कथा का उत्प्रेरक भागवत पुराण से होता है। इसमे कृष्ण किसी लडकी को लेकर जगल जाते है। वहा प्रेम संस्कारो के उपरान्त, उसे वही छोडकर आ जाते हैं। वह कृष्ण को पाने के लिए प्रयत्नशील रहती है। यही आगे चलकर राधा के रूप में विकसित हुई है। मूल कथा का आधार यही है।[1]

पहाडी कलम के अनेक चित्रों में एक व्यापक विषयगत अनुरूपता ढूढनी हो तो वह भारतीय जन–जीवन के सर्वाधिक प्रतिष्ठित व आराध्य नायक कृष्ण है। श्री कृष्ण सम्बन्धी भावना की उत्पत्ति चौथी शताब्दी ईसा–पूर्व हो चुकी थी। विकासगत अनुशीलन पर कृष्ण के रूप मे मिलता है। श्रीकृष्ण के चरित्र का अंकन महर्षि व्यास ने महाभारत, भागवत, हरिवंश पुराण आदि काव्यों में किया है।

पहाडी कलम के लघुचित्रों की तरह चम्बा भित्ति चित्र केवल धार्मिक विषयों तक ही सीमित नहीं रह गये है। मुख्य विषय है– शिव और पार्वती, राम का दरबार,

---

1 डॉ० रघुनन्दन प्रसाद तिवारी, भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व, 1973, पृ०, 25

सगीत के प्रति उन्मुख विषय है– शिव और पार्वती, राम का दरबार, सगीत के प्रति उन्मुख स्त्रिया, केशविन्यास तथा दर्पण मे छवि को आकना। कुछ चित्रो पर यशोदा और कृष्ण अकित हुए है। अन्य चित्रो पर अकित है– स्नान करती हुई गोपिया, प्रणयाकृतिया हरिणो व पक्षियो को खिलाती हुई स्त्रियॉ, युगल प्रणय आदि। कुछेक कृतियॉ दुर्गाशप्तसती को चित्रित करती है।

गीत–गोविन्द मे केवल तीन पात्र है– राधा कृष्ण और दूतिका (सखी) विषय है दो प्रमुख पात्रो की विरह–वेदना। प्रेम आध्यत्मिकता से प्राणन्वित हुआ है पर उससे कही भी शारीरिक मासलता ओझल नही हुई है। दूतिका प्रेम–पगे विरही ह्वदयो को मिलाने वाली श्रृखला है। यह दूतिका राधिका की परिचायिका है और राधा और कृष्ण के सन्देश एक–दूसरे तक पहुॅचाती है। यह सिलसिला बधा रहता है।

राधा के अनेक रूप सामने आते है– कभी मानिनी, कभी वासक सज्जा, कभी विप्रलब्धा, कभी खण्डिता तो कभी अभिसारिका। कवि के शब्द–चित्र तीन पात्रो की अनेक प्रतिमाएॅ आखो के सामने प्रस्तुत करते है। कॉगडा के चित्रकारों ने इन शब्द–चित्रो को अपने मन में श्रद्धा और कल्पना के आधार पर मूर्तिमान किया है और कागज पर रंग और कूची के सहारे भावभीने चित्र प्रस्तुत किए है।

कवि की निम्न पक्तियो को भी चितरों ने चित्रों में आबद्ध किया है–

प्रथम समागम लज्जितया पटुचाटुरा तैरनुकूलम्
मृदुमधुरस्मित भषितया शिथिली कृतजधनठुकलम्

हिन्दी के इस पद का अनुवाद है –

प्रथम मिलन की बेला आयी चढ़ व्रीडा के स्पन्दनरी
किन्तु मधुर बोलों से उनके बनी स्वयं रस–मंजरी।।

यहॉ राधा कह रही है, यह हमारा प्रथम मिलन था। मैं लज्जित थी, लेकिन कृष्ण अपनी बातों से फुसलाता रहा। मैंने मधुर, और प्रलाप में उत्तर दिया तो उसने

भावावेश मे मेरे वस्त्रो की ढीला कर दिया।

कॉगडा के राजा ससार चन्द्र की वैष्णव सम्प्रदाय की ओर विशेष रूचि होने के कारण, भक्ति, काव्य और रीति काव्य की धारा को दरबारी सरक्षण प्राप्त हुआ। यद्यपि चित्रकार का कॉगडा राज्य से सम्बन्ध था परन्तु फिर भी उसकी सरल दृष्टि सामाजिक जीवन और जन–साधारण के जीवन की ओर से न हटी। चित्रकार ने विभिन्न उत्सवो जैसे होली, गोवर्धन पूजा इत्यादि पर अनेक चित्र प्रस्तुत किये है। चित्रकार ने लोक भावना और सामाजिक जीवन का एक जीता–जागता रूप प्रस्तुत किया है।

कृष्ण का जीवन कृषक तथा ग्वालो के जीवन से सम्बद्ध है और इसी प्रकार चित्रकार ने साधारण लोकजीवन को कृष्ण की जीवन–लीलाओ द्वारा अभिव्यक्त किया। पुरूषो के पहनावे मे जिस पर कलगी, पगडी, शरीर पर जामा तथा चुस्त पाजामा, कन्धे पर लटकता पटका तथा कमर पर पेची बनायी गयी है। जो मुगल परिधान के समान है। कृष्ण का भी अनेक चित्रावलियों मे इसी मुगल वेशभूषा में बनाया गया है। वास्तव मे पहाडी राजाओं का मुगल दरबार से सम्बन्ध होने के कारण ही यह परिधान राज्यो में प्रचलित हो गया था। परन्तु फिर भी कृष्ण को अनेक चित्रित उदाहरणों में पीली धोती पहने और सिर पर मयूर पंख युक्त सोने का मुकुट धारण किये हुए भी पूर्णतया भारतीयों के पूर्ण परिधान में चित्रित किया गया है। ग्वाल बाल तथा ग्रामीण जनों को प्रायः लंगोंटी लगाये या छोटी–जांघिया तथा गोल टोपी बनाये अकित किया गया है। कभी–कभी वर्षा के चित्रो में ग्रामीण तथा ग्वालो को काले कम्बल भी सर पर ओढे दर्शाया है।[1]

वैष्णव सम्प्रदाय के कारण, चित्र विषय बने। रस मंजरी तथा जयदेव कृत गीत गोविन्द काव्य रचना पर भी सुन्दर चित्र बनाये गये।[2]

---

[1] डॉ० अविनाश बहादुर, भारतीय चित्रकला का इतिहास, पृ०, 255

[2] डब्लू जी आर्चर, इण्डियन पेंन्टिग इन पजाब हिल्स, पृ०, 15

कुल्लू चित्रो के सम्पुजन सरल है, यहाँ आकृतियो की भीड–भाड नही है। आकृतियो मे सुडौलता व प्रमाण का ध्यान नही रखा गया है।

शारीरिक अवयवो का अकन कमजोर बना है। आकृतियो के तल प्राय सपाट व मन्द मूल रगो मे बने है।

एक चित्र में कृष्ण व गोपियाँ नामक लोककमल मे चित्रित 18वी शती का चित्रण है। इसमें कृष्ण बीच में नृत्य की मुद्रा मे खडे है। दोनों ओर दो गोपियों मोर चवर लिये खडी है।

इस प्रकार हम देखते है कि पहाडी शैली मे कृष्ण–लीलाओं, के ग्राम्य जीवन सम्बन्धी अकन चित्रकार ने बडी निपुणता से चित्रित किया है। गाय चराते कृष्ण, गोधूलि बेला मे घर जाते हुए नन्द, बालसुलभ क्रीडाये करते हुए गोपाल आदि का अंकन पहाडी शैली में बहुत अधिक मात्रा में हुआ है। कला के प्रति उदात्त लोक रूचि के कारण प्रायः प्रत्येक घर में कला कृतियों का संग्रह और संरक्षण होता था। कलारूचि और सुरक्षा व्यवस्था के कारण ही, मध्ययुगीन कला कृतियों के बहुत संग्रह अब तक जीवित रह पाये।[1]

1952 में डब्ल्यू०जी० आर्चर ने पहाडी चित्रकला पर अपनी पुस्तक 'इंडियन पेटिंग इन द पंजाब हिल्स और कांगडा पेंटिग' प्रकाशित हुई। यही से पहाडी कला का स्वतन्त्र व मौलिक चिन्तन प्रारम्भ हुआ। आर्चर महोदय ने पहाड़ी कला सम्बन्धी अनेक शोधपूर्ण लेख लिखे तथा भारत आकर पहाडी स्थानों का भ्रमण किया। एम०एस० रन्धावा ने इसी परिपाटी में पहाड़ी चित्रकला का उद्धार ही कर दिया। कार्लखंडालवाला ने तो पहाड़ी चित्रकारों के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की। रायकृष्ण दास ने भी समय–समय पर अपनी लेखनी इस विषय पर चलाई है। डॉ० वी०एस० गोस्वामी ने यह सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है कि पहाडी चित्रकला

---

[1] वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, पृ०, 102

मुगलिया कलाकारो के प्रयत्नो का प्रतिफल नहीं था बल्कि पहाडो मे बसे वही के चित्रकारो का अपना मौलिक प्रयास था।

राजा ससार चन्द में यदि धर्म और संस्कृति के लिए जन्मजात अभिरूचि न होती तो चित्रकला की जिस महान् थाती को वह सुरक्षित रख सका और उसकी समृद्धि को आगे बढा सका, कदाचित् ऐसा न हुआ होता। उसका जीवन बडा ही नियमित था, प्रात काल वह संध्या–वन्दना–पूजा अर्चना मे व्यतीत करता था और सायकाल नियमित रूप से गायन तथा नृत्य का भी आनन्द लेता था। इस नृत्य गायन मे वह श्रीकृष्ण की रासलीलाओं और ब्रजभाषा के पदों का प्रयोग करता था। श्री कृष्ण का वह अनन्योपासक था। उसकी यह कृष्ण भक्ति उसके जीवन की महत्त्वपूर्ण यादगार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कांगडा चित्र शैली के चित्रकारों ने ऐसा काव्यमय, भक्तिमय एवं प्रेममय विषय चुने जो काव्यात्मक एवं लयात्मक अभिव्यंजना के द्वारा ही सफलता से चित्रित किया जा सकता था। यही कारण है कि उनकी शैली पूरी तरह लयात्मक तत्वों से भरी हुई है।



अध्याय - 3

काँगड़ा चित्रशैली का विकास

- विकसित करने वाले कलाकारों, आश्रय दाताओं के नाम।

कॅंगड़ा चित्रशैली का विकास

कॉगडा चित्रो के कलाकार जयदेव, बिहारी और केशवदास जैसे कवियो की रचनाओ से अपने विषय लेते थे। इन कवियो ने राधा कृष्ण के प्रेम का अपनी काव्य मे विस्तृत वर्णन किया है। इस विषय से प्रभावित व प्रेरित होकर कॉगडा के चित्रकारो ने अपनी चित्रकृतियॉ बनायी। सस्कृति व हिन्दी साहित्य की कृष्ण लीला के और मुगलकालीन काव्य–सौन्दर्य के सम्मिश्रण ने इस चित्रकला मे एक नई शैली को जन्म दिया। पहाडी ऑचल मे बिखरी खूबसूरती के परिप्रेक्ष्य में राधा कृष्ण की प्रेमलीला का अंकन इन चित्रों में बखूबी हुआ है। सुन्दर सतरंगी रगों से सुसज्जित ये चित्र अपने आप मे अद्‌भुत आकर्षण रखते हैं।

राजा ससार चन्द्र एक कलाप्रेमी शासक थे। मात्र बीस वर्ष की आयु मे ही उन्होंने गुलेर राजाओं के दरबार से विभिन्न कलाकारो को बडी संख्या में अपने यहॉ निमंत्रित करना आरम्भ कर दिया था। उन्हीं के प्रश्रय से चित्रकारों ने जय देव की सस्कृति प्रेम रचना 'गीत–गोविन्द'[1], बिहारी की सतसैया', भागवत पुराण'', नल दमयन्ती की प्रेमगाथा और केशवदास की 'रसिकप्रिया'[2] व कविप्रिया जैसे काब्यो से विषय चुने तथा उन्हें सुन्दर चित्रों मे परिवर्तित किया। इसलिए धीरे–धीरे कॉगडा चित्रकला में काव्यात्मकता आती गयी।[1]

(1) विकसित करने वाले कलाकारों, आश्रय दाताओं के नाम

जहॉ पौराणिक साहित्य मे कृष्ण–चरित का वर्णन है और विशेषकर कृष्ण की राधा और गोपियों के साथ प्रेम–क्रीड़ा का, वहॉ पर तो कलाकृतियॉ भरपूर सजीवता और रंगीनियों के साथ उभर आयी हैं। दूसरे विभाग में ऐसे बहुतेरे चित्र मिलेंगे जिनमें पहाड़ी कलम के आश्रयदाताओं, उनके क्रिया–कलाप तथा रंगीनियों के चित्र उभरे हैं। तीसरे विभाग में ऐसे चित्रों को सम्मिलित किया जा सकता है जिनमें लोक

---

[1] कपिल वात्सायन जय देव के 'गीत गोविन्द'

[2] केशव ग्रन्थावली खण्ड 1, पृ० 1

जीवन प्रतिबिम्बित हुआ है।

कॉगडा चित्रकला की पृष्ठभूमि मे जो साहित्यिक अथवा धार्मिक ग्रंथ चित्रित हुए है, उनमे विशेष रूप से उल्लेखनीय है– जयदेव लिखित 'गीत–गोविन्द', बिहारी लिखित 'बिहारी सतसई'[1], भागवत पुराण, रामायण, महाभारत, बारहमासा और रासमाला। कृष्ण–लीला और नायक–नायिका सम्बन्धी चित्र विशेष रूप से अपना महत्त्व रखते है, लेकिन उनके अतिरिक्त नल–दमयन्त्री और सत्यवान–सावित्री जैसी कथाओ को भी पहाडी कलाकारों ने चित्रित किया हैं। नल–दमयन्ती सम्बन्धी रेखाचित्रों की एक चित्रावलि पहली बार कुमार स्वामी ने प्रकाशित की थी। रामायण सम्बन्धी चित्र आकार मे अन्य चित्रों की अपेक्षा बड़े है और उनमें आकृतियों के अतिरिक्त वनस्थलियों का चित्रण भी बडे मनोहारी ढग से प्रस्तुत हुआ हैं।[2]

कॉगडा चित्रकला की विषय–वस्तु अत्यन्त विस्तृत है। रामकृष्णदास के अनुसार 'हिन्दी के प्रमुख और साधारण कवियों से लेकर जीवन की दैनिक चर्या और शबीह तक, ऐसा कोई भी विषय नही जिसे इस शैली के चित्रकारों ने छोड़ा है। लेकिन जहॉ साहित्य के चित्रण का सम्बन्ध है, वहॉ पहाडी चित्रकला मे हिन्दी साहित्य की अपेक्षा संस्कृत साहित्य अधिक मुखरित हुआ है।[3]

बारहवी सदी से लेकर सोलहवीं सदी के बीच जो सस्कृत तथा हिन्दी के कवि हुए और वैष्णवमत से प्रभावित रहे उन्हीं के काव्य को पश्चिमी हिमालय की पहाड़ी रियासतों तथा राजस्थान के चितेरों ने अपनी कला का विषय बनाया। रसात्मकता, उदारता तथा भाव भी इन्हीं इन्द्रियात्मक सौन्दर्य जैसी काव्यनिहित विशेषताओं से चितेरे अभिभूत रहे और उन्होंने, शब्द चित्रों को कूची तथा रंगों की सहायता से अंकित कर डाला।

ग्यारहवीं शताब्दी में हिन्दू–धर्म के अन्तर्गत वैष्णव मत का उदय हुआ। कृष्ण

---

[1] रंणधीर सिह कविवर बिहारीलाल और उनका युग

[2] डॉ० राम कुमार विश्वकर्मा, भारतीय चित्राकन, पृ० 148

[3] डॉ० अविनाश बहादुर वर्मा भारतीय चित्रकला का इतिहास, पृ० 200

की पूजा का प्रचलन बढा। कृष्ण–भक्ति मे रँगे– पगे अनेक कवियो ने अपने–अपने ढग से काव्य रचा। जहाँ कृष्ण–विष्णु के अवतार–उनके आराध्य थे वहाँ उन्होने एक सखा के रूप में भी कृष्ण के सामीप्य को पहचाना। यही भावाभिव्यक्ति अनेक भक्त–कवियो के हाथो सुन्दर भक्ति–काव्य का रूप ले बैठी। वैष्णव–भक्ति के इन कवियों मे जयदेव, चैतन्य, सूरदास केशवदास मीराबाई आदि प्रमुख थे जिन्होंने कृष्ण को अपनी–अपनी अभिरूचि और कल्पना के साथ अत्यन्त मौलिक और रसात्मक रूप से मुखरित किया।

कॉगडा चित्रकला की विषय वस्तु को तीन विभागों मे बॉटा गया है। पहले विभाग मे हमारा धार्मिक साहित्य है। जिसमे रामायण, महाभारत और पौराणिक साहित्य है। रामायण और महाभारत के अनेक विषयों का चित्रण पहाडी कला मे उपलब्ध है लेकिन रामायण के राम से अधिक कृष्ण की जीवन लीला का अंकन पहाडी चितेरों का सबसे प्रिय विषय रहा। कृष्ण–लीला का वर्णन अनेक कवियो ने किया और इस सम्बन्ध मे सर्जित सम्पूर्ण साहित्य पहाड़ी कलम में निखर आया है। यहॉ पर जयदेव लिखित सस्कृत–काव्य 'गीत–गोविन्द' और बिहारी लिखित 'बिहारी सतसई' विशेष रूप से गव्य हैं। यों तो पौराणिक साहित्य के अनेक विषयों को पहाडी चितेरो ने सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध कला अपने झीने से आवरण में प्रस्फुटित होती नजर आती है। सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में बसोहवी शैली का विकास हुआ जिसका प्रमाण भागवत पुराण सम्बधी चित्रावलियों में मिलता है। सम्पर्ण विकास अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ और उन्नीसवी शताब्दी के मध्य में यह कला अपने नये आयाम स्थापित कर चुकी थी। 1790- 1805 ईस्वी तक के 15 वर्षीय काल में कॉगडा कलम अपने उच्चतम् शिखर में पहुॅची और सुन्दरतम् कलाकृतियॉ का सृजन हुआ।[1]

मुगल काल में जो कला अपने कलेवर को निखार कर भी विषय की दृष्टि से

---

[1] जय सिह नीरज, राजस्थानी और हिन्दी कृष्ण काव्य,, पृ० 146

भी उद्दीप्त, उन्मुक्त नजर नही आती वह उपर्युक्त काल में अपने प्राचीन साहित्य और सगीत को रग और रेखाओं के माध्यम से इस रूप मे मुखरित होती नजर आयी है कि ससार भर मे वह अपना समकक्ष नही रखती। मुगल शैली के चित्रो की मुगल शैली की बंधीकाया के प्रतिकूल कॉगडा चित्र शैली प्रवहवान एव छन्दयुक्त है। एम०एस० रन्धावा ने लिखा है– "कला दिल्ली मुगल दरबार के दुर्गन्धमय वातारण से निकल कर कॉगडा पहाडियों की स्वच्छ वायु मे पहुँची।" सहज कॉगडा कला के अस्तित्व पर 'मैटकॉफ' सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे कॉगडा मे पहाडी चित्रकला की खोजबीन, की इसके बाद मे डॉ० आनन्द के० कुमार स्वामी 1908-10 के दौरान पहाडी चित्रकला के लेख लिखे। 1910 ईस्वी में इलाहाबाद में डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने कॉगडा शैली के कुछ चित्र प्रदर्शित किये। 1912 ईस्वी मे कुमार स्वामी ने राजपूत कला को मुगल कला से भिन्न बताया। राजपूत कला को दो भागो में बांटते है (1) पहाडी कला (2) राजस्थानी कला। पहाडी कला का क्षेत्र पंजाब की पहाडी रियासते रही और राजस्थानी कला का क्षेत्र राजस्थान का मैदानी भाग। इसके बाद 1916 ईस्वी में उनकी वृहद कृति "राजपूत पेटिंग"[1] प्रकाशित हुयी जिसके माध्यम से कला प्रेमियों का ध्यान पहाडी कला की ओर आकृष्ट हुआ और यह निश्चित रूप से माना जाने लगा कि यह कला समस्त कला संसार में एक गौरवपूर्ण स्थान रखती है। 1926 ईस्वी में ओ०सी० गांगुली की कृति "मास्टर पीसिज ऑफ राजपूत पेटिंग" का प्रकाशन हुआ जिसमें काँगडा कलम की कतपय सुन्दर कृतियाँ उद्धत हुयी है। 1926 ईस्वी० एन०सी० मेहता की पुस्तक "स्ट्डीज इन इण्डियन पेटिंग"[2] प्रकाशित हुयी जिसमे कॉगडा शैली में गीत गोविन्द के पदों को लेकर अनेक श्रृखंलाबद्ध चित्र उभरे। 1931 ईस्वी जे०सी० फ्रेंच द्वारा लिखित हिमालय आर्ट नामक पुस्तक प्रकाशित हुयी। 1930 ईस्वी में जे०सी० फ्रेंच महोदय ने पहाड़ी रियासतों का दौरा किया और हिमालय आर्ट

---

[1] किशोरीलाल वैद्य, पहाडी चित्रकला, 1969, पृ० 14

[2] एन०सी० मेहता, इण्डियन पेंन्टिग इन रिलेशन लिट्रेचर, पृ० 19

नामक एक कृति का प्रकाशन किया। इस पुस्तक से पहाडी कला के अध्ययन मे बडी मदद मिली है। 1952 ईस्वी मे डब्लू०जी० आर्चर की दो पुस्तके (1) इण्डियन पेटिग इन द पजाब हिल्स, और कॉगडा पेटिग प्रकाशित हुयी। और उन्होने पहाडी कला की विभिन्न शैलियो का विद्वत्तपूर्ण व विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है उनका ही मत था कि कॉगडा कलाकृतियों का जन्मस्थान हरिपुर गुलेर रहा। आर्चर के अध्ययन से एम०एस० रन्धावा ने प्रेरणा प्रााप्त की और 1950 ईस्वी मे इसी आशय से वे कॉगडा घाटी गये और उन्होंने अपने अध्ययन और विश्लेषण से बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका यह योगनदान "कॉगडा" वैली पेटिग्स, कृष्ण लिजेण्ड इन पहाडी पेटिग, और बसोली पेटिग के कलापूर्ण निबन्ध राष्ट्रीय संग्रहालय ने प्रकाशित किये है। कागडा पेटिंग ऑफ द भागवत पुराण, कागडा पेंटिग्स आफ लव, कागडा पेंटिग्स आफ द गीत गोविन्द, कॉगडा पेंटिग्स ऑफ द बिहारी सतसई, कॉगडा रागमाला पेंटिग्स। एम०एस० रन्घावा साहब की खोज व्यवस्थित और महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने यथास्थान घूमघूम कर राजपरिवारो के चित्र संकल्पों का अध्ययन किया, कलाकारों की उत्तर पीढियों से जानकारी प्राप्त की ओर अनेक सम्पर्को से यथायोग्य सहायता ली। कॉगडा चित्रकला का अध्ययन डॉ० मुल्कराज आनन्द ने भी योग्यता और तन्मयता से भी किया है लेकिन कार्ल खण्डवाला की वृहद पुस्तक "पहाड़ी मेनियेचर पंटिंग"[1] में बहुत ही खोजपूर्ण सामग्री उपलब्ध हुयी है।

डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने पहाडी चित्रकला के अनेक कला केन्द्रों का भ्रमण किया और उन्होंने पहाडी कला के लयात्मक सौन्दर्य को नजदीक से पहचाना और उसका एक विशिष्ट कला के रूप में परिचय दिया। उन्होंने लिखा है, "जो वनस्थली चित्रण में चीनी कला की उपलब्धि रही वही यहॉ प्रेम के चित्रण में प्राप्त हो सका।" यदि ऐसा दुनिया में कभी भी और कहीं भी अन्यत्र नहीं हुआ है तो यही वे पश्चिमी द्वारा पूरी तरह खुल पड़े है प्रेमियों की बांहे एक दूसरे की सखियां

---

[1] वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, पृ० 162

गुनगुनाती है। पशु भी कृष्ण की बासुरी से चित्रवत हो गये है और सभी तत्व राग रागिनियॉ को सुनने के लिये मूकावस्था में रूक गये है। पहाडी कलाकृतिया सामान्तयः कलाकारो का परिचय प्रस्तुत नही करती, इन कलाकृतियो मे कलाकारो के नाम अकित नही लेकिन इन कलाकृतियो की ओर जब जे०सी० फ्रेच, डब्लू० जी० आर्चर, गोटज्, कार्लखण्डलवाला, एम०एस० स्धावा ऐसे विद्वान आकर्षित हुये तो उनके धैर्य और लगन से की गयी खोज से महत्वपूर्ण परिणाम निकले।

एक अरसे तक कॉगडा चित्रों की पहचान ठीक से न हो सकी थी लेकिन बाद मे इस सम्बन्ध मे खोजबीन हुयी और अजित घोष ने ऐसा भी सकेत दिया कि सोलहवी शताब्दी के जिन किन्ही विशेष चित्रो को अभी तक राजपूताना, राजस्थान से सम्बद्ध समझा गया था वास्तव में कॉगडा कलाकृतियां हैं।

भारत के अनेक संग्रहालयो में पहाडी चित्रकला के चित्र संग्रहित है। पंजाब म्यूजियम चण्डीगढ, नेशनल म्यूजियम नई दिल्ली, भारत कला भवन वाराणसी, इलाहाबाद संग्रहालय इलाहाबाद, राज्य संग्रहालय लखनऊ, इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता तथा प्रिस ऑफ वेल्स म्यूजियम में अत्यन्त सुन्दर कलात्मक चित्रों के संग्रह हैं।

कॉगडा चित्रशैली के प्रमुख कलाकार एव मुख्य प्रशयदाता महाराजा संसार चन्द थे उनका कला प्रेम ख्याति प्राप्त कर चुका था। महाराजा संसार चन्द ने जिस रूप मे पहाडी कला को आश्रय दिया उसी से ये सम्भव हो सका कि आज यह कला संसार भर की कलाओं में एक ऐतिहासिक स्थान ही नहीं रखती बल्कि उसे अत्यन्त सम्मानपूर्ण स्थान भी प्राप्त है। काँगड़ा कला एक महान भारतीय कला है इस कला के साथ संसार चन्द का नाम अभिन्न रूप से जुड़ा है। आज इतिहास में संसार चन्द का नाम एक शासक रूप में विशेष रूप से गव्य नहीं लेकिन एक कलाप्रेमी के रूप में यह नाम अमर है। साम्राज्य काल की ऑधी में अपना अस्तित्व खो बैठते है लेकिन कला किसी व्यक्ति को अमर बनाने में समर्थ है। जिला कॉगड़ा की पालमपुर तहसील में लम्बागाँव कला की दृष्टि से भी महत्व रखता है। आज भी अनेक चित्र

वहाँ से प्राप्त हुये है वही से सात किलोमीटर दूर विजयपुर नामक एक गाव मे 1765 ईस्वी में तेगचन्द के घर ससार चन्द का जन्म हुआ। ससार चन्द 1751 मे दादा घमण्ड गद्दी पर बैठे। ससार चन्द दस वर्ष की आयु में 1775 ईस्वी मे सिंहासनासीन हुआ था और उसने एक बडी सेना रखी और उसने समस्त कॉगडा किले पर अधिकार कर लिया तब से लेकर एक लम्बे अरसे तक कॉगडा किले पर मुगलो का ही अधिकार रहा। मुगल साम्राज्य का अन्तिम अधिकार सैफ अली खॉ का था और 1781 ईस्वी मे सैफ अली की मृत्यु के बाद बटाला के जयसिंह कन्हैया ने अधिकार कर लिया। इस समय तक ससार चन्द ने अपनी शक्ति को सगठित कर लिया और 1786 ईस्वी में जयसिह से किला वापस ले लिया और किले पर अधिकार, एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी और पहाड़ी रियासतो मे संसार चन्द का बोलबाला हो गया। 1803-4 ईस्वी मे संसार चन्द ने होशियारपुर और बजवाडा की ओर मैदानो पर दोबारा आक्रमण किया लेकिन उसे परास्त होना पडा। ससार चन्द के पूर्वजों के समय में सेना मे रोहिले, अफगान और राजपूत भर्ती किये जाते थे। 1805 ईस्वी मे महल मोरिया के स्थान पर सेनाओं में भिडंत हुयी और राजा संसार चन्द बहुत बहादुरी से लड़ा लेकिन परास्त हुआ। गुरखा सेना के इस अभियान में उन्होंने मण्डी के राजा को मुक्त कर अपने राज्य में भेज दिया और फिर संसार चन्द ने टीरा–सुजानपुर में ही मोर्चा बनाया और अपने परिवार सहित किले की शरण मे चला गया उसके बाद गोरखे कागडा राज्य के भीतर घुस आये। तीन वर्षो तक यहां आरजकता की स्थिति बनी रही और संसार चन्द की सेना निराश हो चुकी थी और वह एक रात को किसान के वेष में अपने परिवार के साथ टीरा–सुजानपरु पहुॅचा और उसने किले को अपने विश्वस्त अधिकारियों के हाथों सौप दिया और महाराजा रणजीत सिंह से मित्रता कर ली। 1809 ईस्वी में सिख सेना ने गोरखों पर आक्रमण किया और उन्हें सतलज के पार खदेड़ दिया। किले पर रणजीत का अधिकार होने से और संसार चन्द की शक्ति खत्म होने से समस्त पहाडी राज्यों पर

सिख साम्राज्य स्थापित हो गया।

कॉगडा चित्रकला मे कुछ चित्रों मे यूरोपीय प्रभाव नजर आते है। ये दो व्यक्ति ओब्रियॉ और जेम्स थे। जिन्हें 1809 ईस्वी मे संसार चन्द ने अपनी सेवा मे रख लिया था। ओब्रियॉ चित्र में संसार चन्द के साथ होली खेलता हुआ दिखाया गया और जेम्स सैनिको को परेड करता हुआ नजर आता हैं। अंग्रेज यात्री मूरक्राफ्ट ने संसार चन्द के राज्य मे इन दोनो व्यक्तियों को देखा था।

ससार चन्द के सम्बन्ध मे अंग्रेज यात्री मूरक्राफ्ट ने पर्याप्त दिलचस्प व्योरा दिया है। अपनी यात्रा के दौरान वह टीरा–सुजानपुर में भी पहुँचा और 1820 ईस्वी में आत्मापुर मे वह संसार चन्द से मिला लेकिन इस समय तक ससार चन्द की शक्ति का सूर्य अस्त हो चुका था। मूरक्राफ्ट ने लिखा है कि आलमपुर मे राजा की दैनिकी का ब्योरा मिलता है– "राजा संसाद चन्द दिन का आरम्भ अपनी पूजा पाठ में व्यतीत करता है। 10 बजे से दोपहर तक वह अपने अधिकारियों और सैनिको के सम्पर्क में रहता था। और छोटे से बगीचे के बाहर स्थित बगले में अपना समय बीताता था। संसार चन्द चित्रकारी का शौकीन था। और उसने अपने दरबार में बहुत से लोगों को रखा है उसके पास चित्रों का बडा संग्रह है जिसमें अधिकतर चित्रों का विषय कृष्ण और बलराम की पराक्रम लीला है तथा महाभारत सम्बन्धी घटनाएं है। सिकन्दर महान के दो व्यक्ति चित्र थे लेकिन राजा यह न बतला सका कि यह चित्र कहाँ से आया था उन्हें वह अपने थाती के रूप में ही मिला था। 1786 ईस्वी में संसार चन्द ने कॉगडे किले पर अधिकार कर लिया था और यही कॉगडा कला के स्वर्णिम युग का प्रभात माना जायेगा। 20 वर्ष अर्थात् 1805 ईस्वी के इस युग में कला ने नये आयाम स्थापित किये। कला के लिये प्रश्रय, सुव्यवस्था और शान्ति एक अपरिहार्य स्थिति है। संसार चन्द न्याय के कायल थे और कला प्रेम का उन्होंने अन्यश्रम परिचय दिया है। कॉंगड़ा कला की अनुपम उपलब्धियों के कारण संसार भर के कला इतिहास में संसार चन्द को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

पहाडी चित्रशैली राजस्थानी कला के समानान्तर पहाडी प्रातर मे एक ऐसी कला सृटि का सधान हुआ है जिसमे कल्पना चित्रो की व्यापकता और कोमल भावो का अपूर्व गुम्फन है। राजस्थनी चित्रकला में जिस समय चित्राकन सम्बन्धी नये प्रयोग किये जा रहे थे तब उसी के आस–पास या कुछ पीछे पहाडी कला में भी वैसे प्रयोग आश्चर्य जनक सफलता के साथ हो रहे थे। कुछ कला–मर्मज्ञो ने पहाडी चित्रशैली को राजस्थानी कला का ही एक अंग माना है– यों भी उनका भेद साधारण प्रेक्षक को नजर नही आता, पर थोडे सस्कार और अभ्यास के बाद उनके रेखांकन और रूप चित्रण के मर्म में बैठा जा सकता है। पहाडी चित्रों की मोहकता उस प्रशस्त वातायन की है जो रहस्यमय सत्य सी अतर मे गूँज कर अपनी स्निग्धता बिखेर जाती है। उनमें लुनाई है, कोमलता है, मलयवात की सी मधुरिमा है। पहाड़ी कलाकारों ने आनन्द की उस निराली दुनिया का निर्माण किया है, जिन्होंने बिना किसी आयाम के अपने अतर्भावों को सहज ढंग से व्यक्त करने का पथ खोज लिया है।[1]

उनकी मुख्य प्रेरणा सृजन की नैसर्गिक भावना से प्रेरित है जिसमें सर्जक की कल्पना–शक्ति का, उसकी उद्‌भावना की जीवन दृष्टि का स्वनिर्मित स्थापनाओं में समाहार हो जाता है। कलाकार के तटस्थ अनुशीलन में जो वास्तविक अनुभवों और निरीक्षणे की रगड से उत्पन्न होता है, एक ऐसी भाव प्रवणता होती है कि तूलिका में सजीव होकर सच्चा भावात्मक चित्र प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि पहाडी चित्रों मे आहलाद का भाव अधिक है और वह सहसा मन पर छा जाता है।

जम्मू से टिहरी–गढवाल और पठान कोट से कुल्लू तक फैला हुआ समस्त पहाड़ी प्रदेश कॉगडा चित्रशैली का जन्मदाता है। अठारहवीं शदी में चम्बा, बसौहली, काँगडा, जम्मू, गुलेर और मण्डी आदि प्रदेश भाषा, जातीयता और सभ्यता की दृष्टि से बहुत कुछ साम्य रखते थे। इनमें परस्पर पर संस्कृति आदान–प्रदान भी होता रहता था, अतएव यहॉ की चित्र सृष्टि भी एक–सी विशेषताओं को लेकर ही उत्पन्न

---

[1] शचीरानी गुर्टू, भारतीय कला की रूपरेखा, पृ० 109

हुई। हिमालय कला शुरू में राजस्थानी कला से ही प्रेरित हुई थी, किन्तु बाद मे बाहरी प्रभावो से अछूती रहकर वह अपने पृथक् विशेषताएँ विकसित कर सकी। 1658 ई० मे इस तरह की पर्वतीय चित्रशैली का आविष्कार हुआ, पर सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी मे तो ऐसे चित्रो का इतना अधिक प्रचलन बढा कि हजारो की सख्या में उनका निर्माण हुआ। इनमे सबसे अधिक लोक प्रिय कॉगडा शैली हुई। हरिपुर गुलेर के राजा गोबर्द्धन चन्द के दरबार में औरगजेब से त्रस्त दिल्ली के कुछ भूले-भटके कलाकारो ने पनाह ली थी। राजपरिवार के कितने ही ऐसे छविचित्र एव समूह चित्र मिले है जो उत्कृष्ट कोटि के हैं। शैली का यही बीजारोपण हुआ।

1775 में कटोच राजवंश के महाराजा संसार चन्द दस वर्ष की आयु मे राजगद्दी पर बैठे। 1786 मे कॉगडा का किला भी उनके हाथ मे आ गया। गुलेर के राजा गोवर्द्धन चन्द की मृत्यु के पश्चात् उनका बेटा प्रकाश चन्द भी कला प्रेमी था।

ससार चन्द के राज्यान्तर्गत नादौन एक सुरम्य जगह थी जहॉ के बारे में प्रसिद्ध था 'आएगा नादौन, जाएगा कौन।' वही उसकी सुकेत वाली नारी ने एक भव्य मन्दिर की स्थापना की थी जिसकी प्राचीरों पर आकर्षक भित्ति-चित्र सज्जा थी। एक सुखद चहक भरे वातावरण में काँगडा कलम पनपी। पर्वतीय प्रदेश में बसने वाले ग्रामीणों के सीधे-सादे जीवन, उनकी धार्मिक मान्यताएँ, घरेलू रहन-सहन की अकृत्रिमता ने कला को लोकोन्मुखी बना दिया। प्रकृति सुषमा के दिग्दर्शक-हरे भरे लहलहाते मैदान, छोटी-छोटी पहाडियाँ, पीपल और बरगद के वृक्ष, आम्र निकुंज, लहराते-बलखाते चश्में, नदी-नद-नाले, सघन झाडियों एवं वृक्षों की ओट में एकान्त झुरमुटयों कॉगडा कला में पहाड़ी संस्कृति के समूचे गुण समाहित हैं- उन्मुक्त, जीवनदायिनी, प्रवहमान, निर्मल, समत्व लिये अर्थात् सभी को अपनाने, आत्मसात् करने की क्षमता एवं व्यापकता की प्रतीक, फलतः कलाकारों की विह्वल आनन्दानुभूति आध्यात्मिकता में परिणत होकर तो प्रकट हुई ही, उन्होंने हाट-बाजारों और रोजमर्रा के दृश्यों का भी सफलतापूर्वक अंकन किया।

'सडक के किनारे'– अठारहवी शती के इस चित्र मे सडक पर गुजरी छुटपुट घटनाएँ दिखाइ गई हैं। विज्ञान के यात्रिक साधनों से पूर्व यात्रा करना कितना समय साध्य और दुरूह था, किन्तु फिर भी उस समय के लोग सफर के कम शौकीन न थे। "कॉगडा चित्र शैली के चित्र में दोपहर के वक्त बड के विशाल वृक्ष के नीचे कुएँ के समीप कुछ राहगीर विश्राम करते दिखाये गये है।"[1] थके हुए मजदूर ने अपने सिर का गट्ठर जमीन पर उतार दिया है, उसके समीप ही एक और उसका साथी पैर फैलाये लेटा है। कुएँ पर बैठी एक महिला थके–हारे एक सैनिक को ओक से जल पिला रही है। एक किनारे एक रईसजादा अधलेटा दर्पण पकड़े अपना मुँह निहार रहा है, उसे पंखा झेला जा रहा है, दो औरते समीप बैठी है और एक नौकर उसे लिए हुक्का तैयार कर रहा है।

इस यात्रा क्रम मे कई चित्र मिलते हैं– सराय मे लम्बा प्रवास, मध्याह्म की बैठक, सर्दी को रात में आग सेंकते लोग जिसमें कोई बच्चे को गोद में लिये बैठा है, कोई बेहद बातों में मशगूल है, कोई उतने ही ध्यान से सुनने के लिये उन्मुख है अधिकाश लोग चिलम का मजा ले रहे है; एक महिला चौखट मे खडी पीछे मुड–मुडकर देख रही है। इसी तरह कालीन बुनने वाले, वस्त्र छापने वाले, कसीदा एवं जरी का काम करने वाले, लुहार, सुनार, पनिहारिन, चूड़ी पहनाती मनिहारिन, हुक्का गुड गुड़ाती मजदूरिन, बाल सुखाती गृहस्थित, पेड़ों या किसी झोंपड़ी के पास बैठे लोगों का झुड़ कितने ही चित्रों में वन्य पृष्ठ भूमि और दूर–दूर तक फैली हरीतिमा, पक्षियों और पशुओं का बहुविध चित्रण इस प्रकार कॉगडा कलाकारों ने अपने देश एवं धरू संस्कृति का प्रतिनिधित्व किया। धौलाधार की हिमाच्छाति सुषमा एवं परिवेश में लय होकर उन्होंने कला के माध्यम से बडी ही सक्षम एवं ह्वदयस्पर्शी अभिव्यक्ति की।

1678 में राजा कृपाल पाल ने पश्चिमी हिमालय में रावीतट पर 74 गाँवों की

---

1 1 शचीरानी गुर्टू, भारतीय कला की रूपरेखा, पृ० 111

एक बहुत छोटी रियासत बसोहली को अधिकृत किया, जहाँ बडे जोश–खरोश से यह इन्द्रधनुषी कला पनपी और जिसके रगों की ललक ने समूचे पहाडी आँचल को अभिभूत कर लिया। यह मुगल कला से प्रेरित न होकर पहाडी लोगों में कृष्ण के प्रति जो गहरा लगाव था, वह किसी अन्तर्यामी, दूर–दराज, पहुँच से परे ईश्वर के रूप मे नही, वरन् सरवा, सहचर औरा वन–वन गाय चराने वाले गोपाल के रूप मे था जिन्हें वे अपनी ही टोली एवं कुटुम्ब का एक आत्मीय बधु मानते थे। माताएँ एक नटखट और खिलाडी बच्चे के रूप में उसकी आराधना करती थीं तो किशोर बालक उसे अपना ऐसा हमदर्द साथी मानते थे जो उन्ही की तरह जंगली फूलों एवं पत्तों की माला को धारण करने में रूचि रखता है। बडे–बूढ़े आराध्य के रूप में तो युवक–युवतियाँ आदर्श प्रेमी के रूप मे उसकी लीलाओं से प्रभावित थे। अत बसोहली कलाकारों ने बालक श्री कृष्ण, दुष्टो के संहारक श्री कृष्ण, गोपियों के साथ तरह–तरह की लीलारत श्री कृष्ण तथा प्राण प्रियतमा राधिका के प्रेम में मतवाले श्री कृष्ण ऐसी अनगिनत भंगिमाएँ चित्रित की। भानुदत्त की 'रस मंजरी' के दो खण्डो का चित्रण इस युग की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

सहस्त्रो पहाडी चित्र उस समय बनाये गए जब कि कागज उपलब्ध न था और चित्रो की पूछ न थी। ज्यादातर चित्र 'हिरण की खाल' पर बनाये जाते थे।[1] एक मटियाला किस्म की पत्तर भी इस्तेमाल किया जाता था जिसे कड़ी मेहनत से घोटकर ओर सफेद रंगपोतकर चिकना बनाया जाता था फूल–फल एवं वनस्पति तथा खनिज व रासायनिक पदार्थों से रंग तैयार कर उन्हें ऐसा पक्का बनाया गया है जिनकी कई सदियों बाद आज भी आभा नष्ट नहीं हुई है। तूलिका में पशुओं की पूँछ के बारीक बालों का उपयोग किया जाता था। अत्यंत सूक्ष्म प्रवहमान रंगो के एक या दो बालों की कूची प्रयुक्त की जाती थी। कलाकारों के सिर पर राजा महाराजा, अमीर–उमरा एवं आश्रयदाताओं की छाया तो थी, किन्तु उन्होंने दूसरों का

---

1 1 शचीरानी गुर्टू, भारतीय कला की रूपरेखा, पृ० 114

मनोरजन करने हेतु मात्र वासनात्मक कला की सृष्टि नही की, अपितु उन्मुक्त रसधारा का आस्वादन कराया। उनकी कला वही कला वही की धरती एव मौसम की उत्पत्ति है। देशी विदेशी म्यूजियम और व्यक्तिगत सग्रहालयो मे डोगरा चित्रिकाएँ काफी संख्या मे उपलब्ध हुई है, जिनमे रेखांकन की अतिशय गतिमयता दृष्टव्य है। इनमे अधिकतर पुराणो और महाकाव्यों के दृश्य अंकित है, किन्तु वृक्ष, मेघ, झील, नदी, हरीतिमा, जल, पक्षी और पुष्पों के चित्राकन में ऐसी सरल चारूता है कि भीतर से किसी निहित प्राणवान अर्थ की व्यजना होती हुई सी जान पडती है।

पहाडी कलाकारों में सर्वश्रेष्ठ चित्रकार मोलाराम के अतिरिक्त चैतू और माणकू का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। मोलाराम कवि और कलाकार दोनों था। ओ०सी० गागुली ने 'गढवाल के मोलाराम के नेतृत्व मे कॉगडा चित्रकारो ने भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक नया अध्याय जोड दिया है। सुनहरे दिन की अंतिम रश्मियों के सदृश्य वे दमकते है। वे अपनी रहस्यात्मक और आध्यात्मिक भावनाओ से प्राचीन भारतीय कला के धूमिल क्षितिज को पुन· आलौकित कर देते है'।

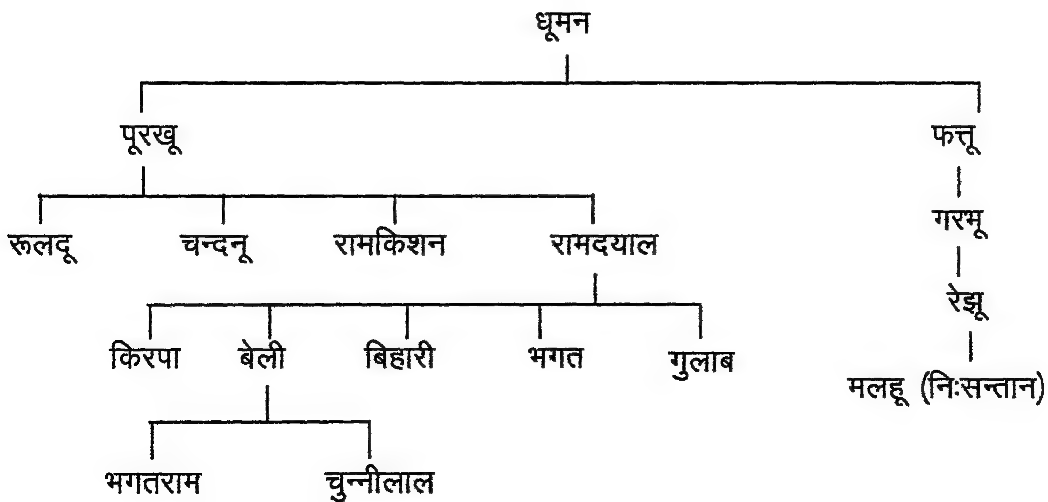
माणकू ने किसी स्त्री की प्रेरणा से 'गीत गोविन्द', बिहारीसतसई, 'रामायण', 'महाभारत और कतिपय महत्वपूर्ण आख्याओं को लेकर चित्र बनाए। नानालाल चमन लाला मेहता के शब्दों में– "प्रकृति के नाना दृश्यो से सुन्दर सरिताओ, उपवनों, निर्झरो और गिरि–गुहाओं से समलकृत सुरम्य पृष्ठभूमि उसके चित्रों की विशेषता है।" चैतू ने 'रूक्मिणी–परिणय' की पूरी कथा को चित्रों में अंकित किया। माणकू की भॉति उसने रामायण और महाभारत के प्रसंगों को लेकर चित्र बनाए। नानालाल चमनलाल मेहता ने चैतू और माणकू की कला–पद्धति का तुलानात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए लिखा है–

"माणकू" को जैसा चटकीला विधान पसन्द है वैसे ही चैतू को हल्के और सादे रंग अच्छे लगते हैं। उसके पोशाक का आलेखन अद्वितीय है, किन्तु विशेषता यह है कि चुनरी या साड़ी की हर सिलवट में समयानुकूल व्यंजकता है। उसका

रेखांकन सूक्ष्म, कोमल और गतिशील है। पात्रो की रूपरेखा भी आकर्षण और भावपूर्ण होती है।''

मोलाराम, चैतू और माणकू उन्मुक्त पथ खोजते रहे। कला की सीमित परिधि मे बद्ध होना उन्हे रूचिकर न था। कला उनके भीतर से उद्‌भूत हुई। बाद मे कितनी ही पजाबी चित्रकृतियॉ जिनमे कुछ उत्कृष्ट 'पोट्रेट' चित्र भी है, पहाडी चित्रो के अनुकरण पर लगभग 1850 ई० तक बनते रहे।[1]

कॉगडा चित्रशैली को विकसित करने वाले कलाकारों, आश्रयदाताओ के नाम प्रमुख रूप से आया है फतू, कुशन लाल या कुशला, बसिया, पुरखू इसके अतिरिक्त कॉगडा के अन्य चित्रकारों के प्रमाण नही मिलते क्योंकि अधिकाश चित्रकार कहीं चित्र के पीछे नाम लिखते थे या नाम लिखते भी नही थे। महाराजा संसार चन्द के समय जो चित्रकार कार्य करते थे उनके नामो का पता चला है जिनमें खुशाला और मानकू का नाम उल्लेखनीय है। पुरखू एक उच्च कोटि का शीर्षस्थ चित्रकार था जिसके हाथ की सफाई और कोमलता का बीड़ेन पाबेल ने उल्लेख किया है। कॉगडा में गुलाब राम चित्रकार जो अभी भी चित्र बनाता हुआ पाया गया है। उसने अपने पूर्वजों की एक वंशावली निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है–



---

[1] डॉ० राम कुमार विश्वकर्मा, भारतीय चित्राकन,, पृ० 148

कॉगडा शैली के चित्रो का विकास अधिकाशतया चित्रकला सगीत और काव्य तीनों का समन्वित रूप मिलता है। राग–रागिनियों को अनेक अग–प्रत्यग और वातावरण के साथ ऐसे सुन्दर ढग से रूपायित किया गया है, जो राजस्थानी चित्रकला से भी बढकर है। राजा संसार चन्द वैष्णव–धर्म मे रूचि रखता था जिसके फलस्वरूप भक्ति और रीतिधाराओ को शासकीय सरक्षण मिला। कृष्ण के प्रेम और श्रृंगारिक लीलाओ का चित्रण हुआ है कृष्ण प्रतीक मान कर अनेकानेक चित्र तैयार किये गये है। कृष्ण से बढकर नायक उनकी दृष्टि मे नही था। महाराजा संसार चन्द के समय मे भागवत पुराण, जयदेव लिखित गीत गोविन्द, बिहारी सत्सई, "केशव दास रचित" रसिक प्रिया और कवि प्रिया एवं नल–दम्यन्ती की प्रणय–कला चित्रित हुई। रामायण, महाभारत, हमीरमठ, शिव–पार्वती की पौराणिक कथाओं के आधार पर विविध चित्र निर्मित हुये है। कॉगडा शैली में प्रेम का ऐसा भावमय लयात्मक, गेयतापूर्ण तथा कलात्मक चित्रण अन्यत्र नही मिलता।

नायिका भेद में श्रृंगार की मनोरंजक एवं भावपूर्ण दशाओं की अद्भुत झॉकियॉ प्रस्तुत की गई है। इस चित्र शैली के चित्रकारों 3 प्रकार की नायिकाओं– स्वकीया (स्वयं की), परकीया (दूसरे की) सामान्य (किसी की भी) का बडा अनूठा चित्रण प्रस्तुत किया है। स्वकीया के आठ रूपों के भी अभिव्यंजना हुई है उक्त के अतिरिक्त व्यक्ति चित्र सुदामा–चरित्र, रूकमणी मंडल, ऊषा चरित्र, पद्मावत, गंगावतरण, हरिवंश पुराण तथा नन्द दास कृति रास पंचाध्यायी आदि काव्यों को आधार मानकर अनेकों उच्चकोटि के चित्रों का निर्माण हुआ।

कॉगड़ा व बसोहली रियासतों में आश्रयहीन मुगली कलाकार पहुॅचे ही थे लेकिन गुलेरिया कलम का प्रभाव समस्त रियासतों में छा चुका था। और ये बाहरी चित्रकार भी पहाडी राजपूती वातावरण में एक दिल होकर फलने–फूलने लगे। पहाडी चित्रकला के विद्वान डॉ० बी०एन० गोस्वामी ने अपनी शोधों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पहाड़ी चित्रकला मुगल दरबार से भागे कलाकारों

के बल पर नही बल्कि गुलेरवासी चितेरों से उनके के वशजो के आधार पर पली और बढी।

जयदेव का 'गीत गोविन्द' बिहारी 'सतसई' केशव, देव व मतिराम की रचनाओ व भागवत पुराण से प्रेरित चित्रकारो ने थोडे ही समय मे हजारो की सख्या में चित्र बनाकर एक चमत्कार कर दिखाया। राग–रागिनियों, नायक–नायिका भेद तथा समस्त श्रृगारिक क्रियायें पहाड़ी कलम की उभरती देह–यष्टि मे समाई हुई थी।

सामाजिक दरबारी व जन–जीवन के सभी क्रिया कलाप चित्रकार की ऑखों से न बच सकी। विषय वस्तु में धार्मिक सहिष्णुता स्पष्ट बनी है। चित्रों में प्रकृति के उन्मुक्त रूप और मदभरी युवतियो को बड़े ही मौलिक रूप से संजोया गया है। लघुचित्रो से लेकर भित्तियों तक कलाकारो ने अपने सीधे हाथो को बढाया है। रेखाओ की कोमलता व एक नये तल–विन्यास ने पहाडी कलम को मौलिकता प्रदान की है।

बसोहली, चम्बा व कुल्लू की लोक कला शक्ति ने रग विधान व आकारों मे निजस्व भरा और इस प्रकार यह कलम हरी–भरी होती चली गई। इस स्वरूप के प्रमुख आश्रयदाताओं में चम्बा के उम्मेद सिंह (1748-890); मण्डी के ईश्वरी सेन (1730-73) विलासपुरी राजा देवी चन्द (1741-1778) कूलू के राजा प्रीतम सिंह (1736-57) एवं कॉगड़ा के महाराजा संसार चन्द (1775-1823) रहें है।

कॉगडा चित्रशैलियों को रंग–रूप देनी वाली चित्र शैली गुलेर ही थी। कॉंगडा शैली गुलेर शैली का ही विकसित रूप है। गुलेर राज्य की स्थापना भी बडी दिलचस्प है। 1405 ई० की एक घटना है कि कॉगडा के राजा हमीर चन्द शिकार की खोज में जंगल में भटक गये और उनके साथी उनसे बिछड़ गये। इसी बीच वह दुर्भाग्य से जंगल में स्थित एक कुयें में जा गिरे। राजा के राजमहल में न पहुँचने पर उसे स्वर्गवासी मानकर रानियाँ स्वयं सती हो गयी और राजगद्दी पर राजा का छोटा भाई आसीन हो गया।

राजा हरीचन्द के कॉगडा लौटने पर हिन्दू परम्परा के अनुसार वह पुन राजगद्दी पर बैठने के लिये तैयार हुये, लेकिन उसने एक नये राज्य गुलेर की नीव डाली, जिसकी राजधानी हरिपुर थी। गुलेर के राजा मानसिंह (1635-61) के समय तक कला विलास शिथिल ही रहा। राजा मानसिंह शाहजहॉ व औरगजेब के लिये अफगानिस्तान व कधार की लडाइयो में लडे।

राजा विक्रम सिंह (1661-75) भी मुगलो के प्रति वफादार रहे। राजा राजसिह (1675-95 ई०) की मुगलों से पट नही सकी, लेकिन राजा दलीप सिह (1773-90ई०) ऐसे राजा हुये जिन्होने राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया।

कॉगडा चित्रशैली को विकसित करने वाले कलाकारों के नाम -

धर्म चन्द – 1528

माणिक्य चन्द – 1563

जय चन्द – 1570

बिधिचन्द – 1585

हरिचन्द – 1612

काँगड़ा किले पर मुगलों का अधिकार - 1620

विजय रामचन्द – 1660

उदय रामचन्द – 1687

भीम चन्द – 1690

आलम चन्द – 1697

हमीर चन्द – 1700

अभय चन्द – 1747

घमण्ड चन्द – 1751

संसार चन्द (द्वितीय) – 1775

कॉंगड़ा किले पर संसार चन्द (द्वितीय) का अधिकार - 1786

गोरखों का कॉंगडा घाटी पर आक्रमण - 1805

कॉंगडा किले पर सिक्खों का अधिकार - 1809

अरूिद्ध चन्द – 1823

गोरखों की टिहरी - गढ़वाल की ओर वापसी - 1831

उन्नीसवीं शती में कॉंगड़ा किले पर महाराजा रणजीत सिंह का अधिकार - 1811

बीसवीं शती में कॉंगड़ा का भूकम्प - 1905।

इस प्रकार हम देखतें है कि कॉंगडा चित्रशैली का विकास 1528ई० से आरम्भ होकर महाराजा ससार चन्द के राज्यकाल तक अपने उत्कृष्ट रूप में पहुॅच जाता है।





महाराजा संसार चन्द



पंडित सेओ



नैनसुख



रामलाल



कामा



मानक



निक्का



जौहरु

अध्याय - 4

काँगड़ा चित्रशैली में अन्य शैलियों का अन्तर, (विभिन्नता और विशेषता)

- (राजपूत, मुगल और अजंता शैलियों के संदर्भ में)

कॉंगड़ा चित्र शैली में अन्य शैलियों का अन्तर, विभिन्नता और विशेषता

कॉगडा चित्र शैली पूर्णतया लघु चित्रकारी है और इसका विकास मुगल और राजस्थानी चित्रकला के गर्भ से हुआ। कॉगडा चित्रशैली के उद्धभव मे अजन्ता भित्ति–चित्र और तत्कालीन बौद्ध कला का योगदान है। कॉगडा शैली, पहाडी शैली की एक प्रमुख शाखा के रूप मे मानी जाती है और इसने अपनी सामान्य प्रकृति के कारण अपनी सहयोगी शैलियो के साथ अटूट सम्बन्ध बनाये रखा।

अजन्ता चित्रकला भारतीय भित्ति चित्रों मे सर्वश्रेष्ठ चित्रकारी है जिसका निर्माण (200 ईसापूर्व से 700 ईस्वी) में हुआ। अजन्ता के वित्ति चित्र महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में स्थित हैं ये चित्र गुफाओ के अन्तर्गत बनाये गये है जिसमे बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। जबकि कॉगडा चित्रकला हिमाचल प्रदेश के जिले में कागज पर निर्मित लघु चित्रकारी है और यह राजपूती संस्कृति के संरक्षण में विकसित हुई है। जबकि बौद्ध चित्रकला बौद्ध–भिक्षुओं, महात्मा बुद्ध के पूर्व जीवन के आधार से लेकर पूजा अर्चना के उद्देश्य से फ्रेस्को विधि में तैयार की गयी है।

अजन्ता भित्ति चित्रण में चित्र भूमि को तैयार करने में लगभग छ· महीने का समय लगता था और भित्ति चित्रण टेक्नीक इटैलियन के चित्रण विधान के अनुसार विकसित हुयी। जबकि पहाडी यह लघु चित्रों में ईरानी शैली के विकसित बारीक चित्रण के मेल से उनके प्रभाव से तथा मुगल दरबार से निराष्षित पहाड़ी रियासतों में जा कर लघु चित्रकला का विकास किया गया है।[1]

अजन्ता चित्रकला का उद्देश्य उपासना, पूजा और अध्ययन करने से था। अजन्ता के चित्रकार सन्त थे इन चित्रकारों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। अजन्ता चित्रकारों का दृष्टिकोण विराट रूप अर्थात् भगवान तथागत का बौद्ध जीवन के

---

[1] किशोरीलाल वैद्य–पहाड़ी चित्रकला, पृ० स० –195

प्रमुख घटनाओ को सर्वसाधारण परिचित कराना दूसरे सत्य को प्रतिभाषित कराना भौतिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओ मे समन्वय स्थापित करना इसलिये अजन्ता के भित्ति चित्रो मे उन समस्त विद्वानो का उल्लेख वेदो, पुराणो तथा अन्य वेदो मे उल्लेखित किया गया है। अजन्ता के भित्ति चित्र समस्त लक्ष्यो सिद्वान्तो तथा आदर्श पूर्ण विश्वविख्यात हुये है।

भावसौष्ठव, गतिशीलता, लयात्मक, रेखांकन, शीलवर्ण विधान रूढिहीनता जीवन के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों को देखना हर क्षेत्रों मे मानव से प्रेरणा लेना हस्त मुद्राओ द्वारा निरूपण ऑखों की बनावट एवं उनका लास्य एक विशेष आकर्षण रहा है। अनेकों विद्वानों ने हस्त मुद्राओं की उपमा विश्वकला में मिलना दुलर्भ बताया है। अजन्ता में नारी चित्रण व्यक्ति रूप में न होकर एक सिद्धान्त रूप में जो सार्वभौम सौन्दर्य का प्रतीक है।

जिसमें एन्द्रीय आकर्षण की अपेक्षा आध्यात्मिकता का आधिक्य पाया जाता है। अजन्ता की नारी गौरव और आकर्षण से लय भारतीय अलंकरण की प्राचीन विशेषता रही है। जिसका निर्वाह अजन्ता के चित्रकारों ने अपने सम्पूर्ण चित्रो में किया है।

अजन्ता में केश विन्यास की रीतियाँ आधुनिक काल के भारतीय नारियों को आज भी प्रेरणा देती है।[1]

अजन्ता की चित्रकला में अतीन्द्रीय आध्यात्मिकता है जिसमें भारतीय कला की छाप है। अजन्ता का भित्ति चित्रण लगभग एक हजार वर्ष तक की परम्परा को विकसित किया है।

काँगड़ा चित्रशैली में नारी जीवन की अभिव्यक्ति उसकी धार्मिक पृष्ठ भूमि में राजस्थानी चित्रकला का रिक्त विद्वमान था। समूचे राजस्थान में मुगल प्रभाव व्याप्त

---

[1] वाचस्पति गैरोला–भारतीय चित्रकला, मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, पृ० सं० –194

था, जबकि कुछ स्वदेशी शैलियाँ अपनी पूर्णयता को प्राप्त कर रही थी उनमे सर्वत्र विशिष्ट गुण का प्रभाव था। उसका वह गुण था उसकी उन्नति आदर्शवादिता को हम इस आधार पर अलग करके पहचान सकते है कि समस्त भारत मे पंजाब का पर्वतीय भू–भाग ही ऐसा प्रान्त था, जहॉ कि राजपूती संस्कृति को अधिक स्वतत्रता से भोगने का सुयोग मिला। संभवत. यही कारण था कि कॉगडा के कलाकारो में दरबारी जीवन के मूल विचारो को व्यक्त करने मे अधिक निपुणता और सच्चाई को दर्शाया। इसीलिये यह सभ्भव हो सका क्योकि चिर आंकाक्षित कलासाधकों को कला के परम अनुरागी संरक्षकों का अनुकूल आश्रय प्राप्त हुआ और दोनों की भावनाओ से प्रेरित कॉगडा की चित्रकला को उन्नत स्थान प्राप्त होने का संयोग मिला। कॉगडा की चित्रशैली को जीवन, गति और व्यक्ति करने में गुलेर और बसौली शैली के कलाकारों का बडा योगदान रहा है वे सभी कलाकार जिन्होंने काँगडा चित्र शैली को जीवनी तत्त्व प्रदान क अपनी अपूर्व कला कुशलता का परिचय दिया गुलेर की छोटी रियासत से सम्बनित थे। उसकी स्थापना कॉगडा की एक उपशाखा के रूप में हुयी थी जो कॉगडा घाटी के सुदूर दक्षिण होने के कारण पंजाब के सुदूर मैदानी भागो तक सुगमता तक पहुॅच सकने में समर्थ थी। इसमें बसौली के कलाकारो ने कॉगडा की स्थानीय शैली को फैलाया और उसमें लोकप्रिय तत्वों का समावेश किया। राजा कृपाल पाल के कुछ वर्ष पूर्व से पंजाब की पहाड़ियों में चित्रकला की अत्यन्त समृद्ध शैली बसौली स्कूल का प्रभुत्व था। इस शैली की विशेषता उसके उत्कृष्ट तीव्र रंगों, अतिश्योक्ति पूर्ण एठनों और एक प्रकार की विनीत, किन्तु अशिष्ट सजावटों मे देखा जा सकता है। गुलेर की इस उन्नत सुख समृद्ध का परिचय राजा दिलीप सिंह (1645–1730 ईस्वी) के शासन काल में मिलता है। इसी समय चित्रकला के एक नयी शैली का जन्म हुआ जो कि बसौली शैली की अधिक निकट थी। इस शैली के कलाकारों ने बहुधा अपने चित्रों की पृष्ठभूमि के लिये चौरस लाल मैदानों के दृश्य अंकित किये है। यह स्थिति राजा गोवर्धन के शासन काल

1730–1773 ईस्वी की है। जिस समय की बनी हुयी कुछ कृतियो मे वे विभिन्नताये दिखाई देती है जो कि बसौली की चित्रकलाओ में नहीं है।

1740 ईस्वी के आसपास मुगल शैली के एक निपुण कलाकार ने मैदानी प्रदेश से आकर गुलेर के दरबार मे आश्रय प्राप्त किया। उसकी शैली शहशाह अकबर के युग की प्रसिद्ध मुगल शैली से सर्वथा भिन्न थी। इस शैली मे अकबर के राज्यकाल के अंतिम दिनो में सुरभित प्रवाहमान प्राकृतिक सज्जा की अनिकल समानता विद्यमान थी। उसके चित्रांकन के तौर–तरीके कलाकार पं० नैनसुख के चित्रो से सर्वथा मिलते–जुलते थे। यह नैनसुख पहाडी और शैली का विख्यात कलाकार था, जो कि जम्मू राजघराने के राजा बलवत सिंह के यहॉ चित्रकारी करता रहा। इन दिनों कलाकारों के चित्रांकन में इतना सामीप्य था कि विश्वास होता है कि या तो नैनसुख ने गुलेर में रहकर चित्र बनाये थे, तो बहुत संभव है कि उसके कला निपुण पूर्वज गुलेर दरबार में रह चुके थे।

इस परिस्थिति के परिणाम स्वरूप हमें 1740–1770 ई० तक गुलेर की चित्रकला में एक साथ दो विधियों की ऐसी कला कृतियों के दर्शन होते है, जो एक–दूसरी से बहुत ही प्रभावित है, किन्तु जिनका अपना–अपना स्वतंत्र अस्तित्व तथा जिनके अपने अलग–अलग उद्देश्य थे। गुलेर की इस संमिरित चित्रशैली में मुगल कला का भी प्रभाव है। यह प्रभाव उसके बाहरी स्वरूप तक ही सीमित है, जो कि चित्रों की साज–सज्जा और राजा तथा उसके दरबारियों की अनके विध स्थितियों की व्याख्या मात्र करता है। कुछ धार्मिक विषयों की अभिव्यक्ति के लिये भी उसका आश्रय लिया गया हैं इन चित्रों का वह भाग, जो गुलेर से सम्बन्धित है, अपनी कुछ अलग विशेषतायें रखता हैं। उदाहरण के लिए गुलेर की कला में सर्वत्र वर्ण्य–विषय की विशेष परिस्थिति को सदा ही ध्यान में रखा गया है। मुद्राओं के अंकन और तीव्र अनुराग की अभिव्यक्ति का भी ध्यान रखा गया है। व्यक्ति चित्रों की अभिव्यक्ति में आकृति की स्पष्टता, रेखाओं की गति मत्ता और रंगों का सरलीकरण,

सभी के सहयोग से चित्रों मे एक भव्य प्राकृतिक भाव दर्शित है।

इन चित्रो का दूसरा भाग, जिनका निर्माण बसौली की शैली को लेकर हुआ है, उनकी भव–भूमि शांत वातावरण से पूरित है। उनमे दर्शित कलापूर्ण यत्न प्रशसनीय है। उनकी चौरस पृष्ठभूमि या तो लाल रग से या तो लाला नीला तथा सफेद रंगों के समिश्रण से निर्मित है। इसी प्रकार जो चित्र आकस्मिक रूप से बनाये गये है, उनमें और जो चित्र स्थायी रूप से बनाये गये है, उनमे स्पष्ट अतर झलकता है। उक्त दोनो प्रकार के गुलेर में नारी–विषयक सभी चित्र सुन्दर है। उनके ताल–स्वर सम्बन्धी भाव, हिलने–डुलने की गति मत्ता और प्रसन्नचित मुख–मुद्रा सभी में स्वाभाविक आकर्षण है। नर–नारी के सेक्स सम्बन्धी चित्रो की भी उसमे अधिकता रही है।

1773 ई० में राजा गोवर्द्धन सिंह स्वर्गवासी हुए। तब तक गुलेर कलम के कलाकार अपनी कृतियों के लिए भिन्न–भिन्न भौतिक तरीकों को प्रयोग में ला रहे थे। अभी तक कोई भी ऐसे प्रामाणिक तथा अधिकारपूर्ण तरीके प्रकाश में नहीं आये थे, जिनके सामूहिक रूप से स्वागत किया गया हो। पारस्परिक स्पर्धा को उभाडने वाले चित्रो के क्षेत्र में भी तक तक कोई कमी नहीं आयी थी। इसी समय कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य भी हुए, जिनके परिणामस्वरूप कला के लिये एक शानदार एव सफल मंच का निर्माण हो रहा था। इसी समय कॉगड़ा में एक प्रभावशाली शासक का उदय हुआ।

भारतीय साहित्य, संगीत व कला का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध मानवीय चेतना पर बराबर छाया रहा। वह कभी भी अलग नहीं दिखाई पड़ता। इसी दर्शन का समरूपी प्रतिफलन है कॉगडा चित्रकला। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में यदि कला अपने नये आयाम स्थापित कर चुकी थी। 1790 से 1805 ईस्वी के पन्द्रह वर्षीय काल में कॉगडा कला अपने उच्चतम शिखर में पहुँच कर सुन्दरतम् कलाकृतियों का सृजन किया।

मुगल काल मे जो कला अपने कलेवर को निखार कर भी विषय की दृष्टि से उदीप्त और आभापूर्ण नजर नही आती वह उपर्युक्त काल में अपने प्राचीन साहित्य व संगीत को रग और रेखाओ के माध्यम से इस रूप मे मुखरित करती नजर आयी है कि संसार भर मे वह अपना समकक्ष नहीं रखती। मुगल चित्रो के बधी काया के प्रतिकूल पहाडी चित्रों में बिम्ब–विधान उसको कलात्मक श्रेष्ठता देने मे समर्थ हैं मुगलकालीन चित्रों के दिल्ली से निष्कासन और पंजाब की पहाडी रियासतो में आश्रय से कला मे जो परिवर्तन हुआ, उसके सम्बन्ध में एम०एस० रन्धावा की टिप्पणी उल्लेखनीय है– "कला दिल्ली मुगल दरबार के दुर्गन्धमय वातावरण से निकाल कर पंजाब पहाड़ियों की स्वच्छ वायु में पहुँची।"

सहज घुमाव व प्रवाहमान रेखाओं से युक्त मुगलशैली ने अन्तत काँगडा घाटी की रमणीय वनस्थलियों के चित्रण मे पूर्णत. प्राप्त की। मुगल चित्रकला ने शैली, रूप–चित्र, दरबारी–शान, तडक–भड़क और शिकार के दृश्यों के अंकन मे एक बहुत बडा स्तर प्राप्त किया था। मुगल बादशाहों, बेगमों तथा दरबारियों के व्यक्तिय नि·संकोचना आदि अति उत्तम रचनायें हैं और ऐतिहासिक महत्व रखती है। फिर भी जिस कला का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत उपलब्धि का गुणगान करना है उसका महत्व स्थायी नहीं हो सकता। पथभ्रष्ट कुलीनों के प्रेमालाप और शरीर सम्बन्धी व्यापार भी किसी कला को जन्म दे सकते है लेकिन उस महान कला के नहीं जो मानवता को अनुप्रेरित करती है। 1908–10 के दौरान इलाहाबाद में डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने 1912 ईस्वी में कॉगड़ा शैली के कुछ चित्र प्रदर्शित किये और उन्होंने राजपूत कला को मुगल कला से भिन्न बताया। पहाडी कला और राजस्थानी कला।

1916 ईस्वी में उन्होंने 'राजपूत पेंटिग' नामक पुस्तक प्रकाशिक की जिसमें कला प्रेमियों का ध्यान पहाडी कला की ओर आकृष्ट हुआ और यह पहाड़ी कला समस्त कला के संसार में एक गौरवपूर्ण स्थान रखने लगी। डॉ० कुमार स्वामी को

उक्त कृति के पश्चात् 1926 ईस्वी में ओ०सी० गांगुली की कृति 'मास्टर पीसेज ऑफ राजपूत पेंटिग' का प्रकाशन हुआ। जिसमे कॉगडा शैली की कतिपय सुन्दर कृतियां उद्त हुयी है। 1926 ईस्वी मे एन०सी० मेहता की पुस्तक 'स्टडीज इन इण्डियन पेटिग' प्रकाशित हुयी। जिसमें कॉगडा शैली मे गीत–गोविन्द के पदो को लेकर अनेक चित्र उभरे। 1931 ईस्वी में जे०सी० फ्रेच द्वारा हिमालय आर्ट पुस्तक मे गुलेर मण्डी, कुल्लू, अर्की और चम्बा मे अनेक चित्र को देखने का अवसर मिला। 1952 ईस्वी मे डब्लू०जी० आर्चर की दो पुस्तके इण्डियन पेंटिंग असदा पंजाब हिल्स और कॉगडा पेटिंग्स प्रकाशित हुयी इसमे पहाडी कला की विभिन्न शैलियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 1950 ईस्वी मे एम०एस० रन्धावा ने कॉगडा वैली पेटिंग, कृष्ण लीजिंग इन पहाडी पेटिंग और बसौली पेटिग इसके अतिरिक्त निम्न चार कलापूर्ण निबंध नेशनल म्यूजियम ने प्रस्तुत किये है . – "कॉगडा पेंटिग्स ऑफ भागवत पुराण, कॉगडा पेटिग्स आन लव, कॉगडा पेटिंग्स ऑफ द गीत–गोविन्द, कॉगड़ा पेंटिग्स ऑफ द बिहारी सतसई और कॉगड़ा रागमाला पेटिंग्स प्रकाशित किया।" पहाडी कलाकृतियों सामान्यतः कलाकारों का परिचय प्रस्तुत नही करती इन कलाकृतियों में कलाकारो के नाम अंकित नहीं है लेकिन इन कला कृतियॉ की ओर जब जे०सी० फ्रेंच और रन्धावा जैसे विद्वानों ने खोज करके महत्वपूर्ण परिणाम निकाले तो किन्हीं कलाकारों का अता–पता मालूम हुआ। 120 भागवत पुराण सम्बन्धी कलाकृतियों को छोड़कर जिनका औसतन आकर 12"X8" है। इन चित्रों का बाहरी किनारा लाल रंग के बिन्दुओं से अंकित है और भीतरी किनारा नीले–काले में रंगा हुआ है।

ई०बी० हैब्रेल (1908 ईस्वी) का नाम भारतीय कला के साथ उसके अन्यतम प्रशंसको के साथ जुड़ गया है। उन्होंने भारतीय कला को खूब समझा और कला प्रेमी जगत को परिचय दिया। अजन्ता उन्मुक्त द्वन्दों में गायी हुयी गाथा के नाम से भीं अभिहित हुयी है। इसके सरल और मुक्त रूप से अभिभूत होकर डी०एच० लारेंस

ने लिखा था अजन्ता स्त्री–पुरूषो का कितना सरल आन्तरिक कितना परिपूर्ण सम्बन्ध वाह । उसमें उदारता है वह श्रृद्धा, शारीरिक होते हुये भी उसमे हरदम नही पर काम है। बोटिर्सिलि अजन्ता के सामने अश्लील प्रतीत होता है। अजन्ता तो मानवीय कला का अन्तरिक्ष है। मानव की समृद्धि का चरम उत्कर्ष। स्त्री–पुरूष के परिपूर्ण, आन्तरिक, सरल, सूर्यकाम, भरपूर सम्बन्धो की छटा। आज कल हम जिसे काम कहते है वह एकागी व ईर्ष्यों से भरा है उसमें प्रभुत्व का दर्पण है पर अजन्ता नितान्त निष्पाप है। एक अन्य दृष्टि से अजन्ता के चित्रों मे रूचि के अन्य दो कारण है। उक्त चित्रो की कलातीत अक्षणुता और रेखाओं व रंगो का लयात्मक सामन्जस्य। यही दो कारण है कि वे कलाकार मन का भावभूमि पर अपनी छाप छोडती रही इस प्रकार आज तक अजन्ता भारतीय चित्रकला की एक जीवन्त थाती बनी रही और पहाड़ी कला के रूप मे नये आयाम स्थापित करती रही। भारतीय मानस चेतना को भी सक्षम रूप से मुखरित किया। अजन्ता भारतीय कला का मूल प्रेरणास्रोत रही। अजन्ता की कृतियां अपनी रेखा व रंगों में जो चैत्य अर्थ लिये है वह जीवन की असर्थ अभिव्यक्ति है। यह कहना अनुचित नहीं नहीं कि कॉगड़ा कलाकृतियों का उद्‌गम ढूढंना हो तो वह भित्ति चित्रों की ऐसी परम्परा है जिसका आरम्भ अजन्ता के भित्ति चित्रों से होता है। लारेन्स बेनियोन का भी इससे मिला जुला मत इस प्रकार है 'काँगड़ा आकृतियां का उद्‌गम भित्ति चित्र से हुआ है। जिन प्राचीनतम् उदाहरणों के सम्बन्ध में हमें मालूम है, यद्यपि शायद वे बहुत ही कम है, वे भी सत्रहवीं शताब्दी से पहले के है और अपूर्व रूप से प्राचीन है · जीवन्त प्रकृति के निरूपण के स्थान पर उन्होंने पारम्परिक विधि को चुना है लेकिन भित्ति चित्रण के अनुकूल ही उन्होंने वृहद विधान को धारण किया है। पहाड़ी का अजन्ता की थाती के रूप में पर्सी ब्राउन ने भी स्वीकार है "राजपूत चित्रकला" जो इसी नाम से अभिहित हुयी है अपनी अभिव्यक्ति में विशिष्टः हिन्दू है और इसके विभिन्न रूपों से यही पता चलता है कि यही भारत की स्वदेशी कला है और अजन्ता के पुरातन

भित्ति चित्रो की सीधी थाती है। राजपूत मुगल शैलियो का विकास लघु चित्र की रूप में कागज पर की गयी चित्रकारी के रूप मे विकसित हुई।

7वी शती से पूर्वी देशो पर किया और वे अपने साथ चीन और भारत मे लगभग 10वी शती तक कागज का प्रचार किये इसी समय से चित्रकला भित्ति से उतर कर कागज पर चित्रण और लेखन दोनो आरम्भ हो गया। भित्ति चित्र, ताडपत्र, भोजपत्र आदि के स्थान कागज का व्यापक आरम्भ हुआ और कागज पर चित्रण कार्य आरम्भ हुआ। जिससे पुस्तक चित्रण अधिक बलवत्तीय हुई। ईरानी कला का प्रभाव भी रेखाओ मे आया और बारीक रेखांकन विकसित हुआ। लगभग 13 वीं शताब्दी मे तैमूर वश शासकों के संरक्षण में बुखारा हिरायत, समरकन्ध इत्यादि स्थानो पर जिस पारसी कला का आरम्भ हुआ था।

15वीं शताब्दी में मुगल बादशाहों ने भारत में बिहजाद नामक सुप्रसिद्ध चित्रकार को बाबर अपने साथ भारत ले आया और बिहजाद के द्वारा विकसित फारसी कला भारत में आ गयी। मुगल बादशाहों की अपनी चित्रशालायें होती थी जिसमें बादशाह स्वयं चित्रण करते थे। इस तरह से आदर्श सम्मान के कारण भारत के विविध वर्ग में तेजी आयी और भारत में एक लघु चित्रकारी का विकास हुआ।

बिहजाद ईरानी शैली का प्रमुख चित्रकार था और उसने भारत मे लघु चित्रकारी के उत्कृष्ट तैयार की ओर एक लम्बी शाखा तैयार की।[1]

राजपूत शैली का विकास बौद्ध चित्रकला अथवा अजन्ता भित्ति चित्रों के पश्चात् तत्कालीन महाराजा संरक्षण में होता रहा और भित्ति शैली का प्रभाव राज्य स्थानीय चित्रकला प्रमख रूप से पड़ता रहा। राजस्थानी चित्रकला का विकास बौद्ध चित्रकला के गर्भ से माना जाता है क्योंकि 15वीं शती में भारतीय कला के साहित्य का पुनरूत्थान था। इस युग में विशेष उन्नति रागमाला में रीतिकालीन, छन्द शास्त्र विशेष चित्रों के रचना रामानुजीय भक्ति सम्प्रदाय में कृष्ण चित्रों का हुआ।

---

[1] आर० ए० अग्रवाल, कला विलास 1779, मेरठ पृ० स०, 138

राजस्थान चित्रकला की उत्पत्ति जनसमाज की कविता, सगीत तथा नाटक के अनुकूल हुयी। इस शैली के कलाकारों ने पुराण भागवत कृष्ण लीला, रामायण, बारहमासा, रागमाला तथा कविता का भावनात्मक सांकेतिक चित्रण किया है। राजपूत प्राचीन भारतीय निधि है। जिसका विकास प्राचीन गुफाओ के चित्रो से माना जाता है। यह प्राचीन सत्यचित्र पाडुलिपियॉ अजन्ता, एलोरा की गुफाओं के चित्र शैली से मेल खाते है। राजपूत ईरानी शैली से कोई सम्बन्ध नही है। मुसलमानों के आने से पहले राजपूत शैली का उद्बभव हो चुका था। महाराजा उदयादित्य के समय 11वीं शती गीत–गोविन्द प्रिस ऑफ मयूजियम में सुरक्षित है।

कॉगडा चित्रकला का उद्बभव मुगल दरबार के निराश्रित दरबारी चित्रकार जो पहाडी रिसासतो कॉगड़ा जम्मू, चम्बा, बसोली, गुलेर आदि स्थानो में बस गये थे और इन चित्रकारों ने एक अभूतपूर्व जो कॉगडा चित्रकला के नाम से विख्याता हुयी। कुछ लोगों ने इस मत सर्वमान्य रूप से स्वीकार नहीं किया क्योंकि पहाडी चित्रकला इसके पूर्ण होता रहा है। जिन चित्रों में मैटकाफ ने कॉगडा से प्राप्त किया।

1916 ई० के आस–पास डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने कला इतिहास मे 1916 ई० में कई लेख करवाये। डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने राजपूत चित्रकला की उत्पत्ति की।

कॉगडा चित्रकला की तीन महत्वपूर्ण शैलियॉ

1- राजस्थानी

2- पहाडी

3- सिक्ख

कॉगडा चित्रकला शैली महाराजा संसार चन्द्र के राज्यकाल में 1775 ई० से 1823 के मध्य विकसित हुई। कॉंगड़ा के राजा धर्म चन्द्र और पौत्र संसार चन्द्र

प्रभावशाली कला प्रिय शासक थे जो कृष्ण के अनन्य भक्त थे जिनके सरक्षण मे कॉगडा शैली का विकास हुआ। कॉगडा क्षेत्र पर 1786 ई० तक मुगलो का आधिपत्य बना रहा और तत्पश्चात् 1809 ई० तक सिक्खो का अधिपत्य बना रहा।[1]

कॉगडा शैली के चित्रकारो को जिन शासकों ने जिन शासको ने प्रश्रय दिया था उनमें हमीर चन्द्र (1700–1747 ई०) अभय चन्द्र (1747–1750 ई०), घमण्ड चन्द्र (1751–1774) और संसार चन्द्र (1775–1823 ई०) के नाम उल्लेखनीय है। काँगडा घाटी में इस शैली का उद्‌भव कैसे हुआ इस शैल में अनेको मत है कुछ विद्वानों की मान्यता है कि औंरगजेब के मुगल साम्राज्य से निष्कासित निराश्रित चित्रकार आश्रय की खोज मे पजाब के पहाडी रियासतों की ओर आये। लेकिन इस समय लोक कला रियासते मे चित्रों का निर्माण होता है। राज्य संरक्षण एवं प्रश्रय के कारण चित्रकारो को अपनी कला निखारने का सुन्दर अवसर मिला। 1739 ई० में नादिर शाह और इसके बाद अहमद शाह अब्दाली के हमलो से दिल्ली की बुरी हालत हो गई, यहॉ पर चित्रकारों का रहना दूषित हो गया और ये चित्रकार पहाडी क्षेत्रो की ओर गये जहॉ शान्ति और अच्छा वातावरण मिला चूंकि पहाड़ी क्षेत्रों में छोटे–छोटे राज्य थें अतः इन कलाकारो का सीधा सम्बन्ध राजाओं से हो गया। राजाओं का संरक्षण प्राप्तकर इन चित्रकारों ने अपना कला अराधना को अपना व्यवसाय बनाया।

काँगडा शैली के विकास में गुलेर राज्य शैली का स्थान सर्वप्रथम आता है। गुलेर शैली के निष्कासित चित्रकार गुलेर पहला राज्य मिला किन्तु काँगड़ा के सुव्यवस्थित विकास में हरिपुर–गुलरे राज्य के राजा गोवर्धन चन्द्र (1744–1773 ई०) का नाम सर्वप्रथम आता है जो कि कला प्रिय तथा लोक प्रिय शासक था। बसोहली की राजकुमार के साथ विवाह हुआ जिसके कारण इसका कॉगड़ा शैली से इसका सीधा हो गया और यहाँ के कलाकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर ये जिससे बसोहली और काँगड़ा का पारस्परिक सम्बन्ध है। राजा गोवर्धन के बाद प्रकाश चन्द्र

[1] किशोरी लाल वैद्य तथा ओम चन्द हाण्डा पहाडी चित्रकला पृ० स० 149

(1773–1790) ई० से गुलेर का शासक हुआ। इस शासक के समय मे आर्थिक संकट आ पडा और पडोसी राज्य कॉगडा मे महाराजा संसार चन्द के यहॉ पहुँ गये (1775–1823 ई०)। यहॉ इन चित्रकारों को पर्याप्त सम्मान एवं सरक्षण मिला। गुलेर शैली के चित्रकार विशन सिह और प्रकाश चन्द्र के चित्रो मे भी बसोहली और जम्मू के पारस्परिक प्रभावो के सम्मिश्रण से जिस कला शैली का दुर्भाव हुआ वह कॉगडा शैली के रूप में प्रतिष्ठित हुई। प्रकाश चन्द्र का एक विवाह चम्बा की राजकुमारी से हुआ जिसे कला को नयी दिशा देने का अवसर मिला। प्रकाश चन्द्र समय मे अनेको चित्रकार टीरा–सुजानपुर कॉगडा तथा चम्बा आ गये। चम्बा के राज सिंह (1764 से 1794 ई०) में गुलेर के चित्रो ने चित्र बनाये। अनेको भागों से प्रभावित गुलेर की यह कला 1780 ई० के आस–पास कॉगडा चली गयी। जहॉ ससार चन्द ने इसे सवार कर भव्य रूप दिया। कॉगडा चित्र शैली का केन्द्र नूरपुर था। जहॉ तोमर वंशीय क्षत्रिय राजा का राज्य था। कॉगडा का तीसरा महत्वपूर्ण स्थान टीरा सुजानपुर था जहॉ राजा संसार चन्द ने कला जगत में एक नवीन क्राति उत्पन्न कर उसे उच्च शिखर पर पहुँचाया। यह कला नादौन में भी पहुँची। महाराजा संसार चन्द के बाद अनिरूद्ध चन्द्र गद्दी पर बैठा जिसने अपने पिता की परम्परा को निभाया जिसे उन परम्परा में देखा जाता हैं। 1823 ई० के बाद राजा संसार चन्द संसार से विदा हो गया।

कला का सम्पूर्ण दर्शन में प्रकृति में निहित हैं। प्रकृति के शुभाशुभ आयामा सदैव मानव मन में हिलोरें लेते रहे है। जीवन की समस्त प्रक्रियायों प्रकृति के परिवेश में स्पान्दित होती है। प्रकृति के लावण्यमय रूप में कभी मानव ह्रदय में आहलादित होता है। उसका विकराल रूप भयातुर होता है और रहस्यमय रूप उत्सुकता प्रस्फुरण करता है। प्रकृति की प्रक्रियायें वैज्ञानिक को विश्लेषणात्मक, साहित्यकार को विवेचनात्मक और चित्रकार को सृजनात्मक बनाती है।

मुगलकाल में भी जहॉगीर ने प्रकृति में विचरण करते हुये पशु–पक्षियों की

भौतिक सूक्ष्मता की चित्राभिव्यक्ति को परमानन्द बताया।

जापानी कला मे भी प्राकृतिक प्रक्रिया को चित्रकार के मस्तिष्क की आत्मिक प्रतिक्रिया बताया गया है इसी आत्मिक प्रतिक्रिया का प्रतिफल पहाडी शैली के कलाकारो मे ध्वनित हुआ। यही कारण है कि कॉगडा बसोली, गुलेर, गढवाल, चम्बा के कलाकारो की प्रत्येक कृति में उनका भौगोलिक एव राजकीय परिवेश प्रतिध्वनित हुआ पहाडी राजवाडों की पर्वतीय श्रृंखलाये, प्रवाहित सरितायें, वृक्ष पशु–पक्षी, पुष्प–भौतिक और आत्मिक दोनो ही रूप में आह्लादित हुये। इनके चित्र किसी भी परिवेश के बने, दरबारी धार्मिक, व्यक्तिगत, ऐतिहासिक, सामाजिक, सभी मे प्राकृतिक रूपाकारो को कलात्मक स्थान पहाडी कलाकार ने अपनी चित्राभिव्यक्ति मे दिया।

पहाडी कलाकारों के चित्रों के सर्वेक्षण के मध्य सर्वप्रथम जो अनुभूति हुयी कि चित्रकारों ने शायद प्राकृतिक अभिव्यक्ति में सदैव स्वप्निल ससार की ही अभिव्यंजना की है परन्तु जब मैंने इन रजवाड़ों के रम्य प्राकृतिक परिवेश का साक्षात अवलोकन किया तो चित्रकार की इस प्राकृतिक अभिव्यंजना का स्रोत स्वयं वहॉ ने नर नारायण पर्वत एवं उनके मध्य प्रवाहित अलकनन्दा सरिता का प्रवाह ही हैं यह वास्तव में इन विराट अखण्ड श्रृंखलाओ के चित्रण मे पहाडी कलाकारों ने प्राकृतिक यर्थातवाद में प्रकृति के गद्य की नीरस नदी तथा तालाबो के चित्रण में पान, मछलियो के झुण्ड, मछुवे, कमल, मगरमच्छ, घड़ियाल आदि दिखाने चाहिये। किनारों पर छोटे–छोटे पौधे भी चित्रित करने चाहिए।

यदि नगर का चित्र खींचना हो तो उसमें सुन्दर देव मंदिर राजप्रसाद, हाट, दुकाने, घर और सडके आदि का संयोजन करना चाहिए। इसी प्रकार ग्राम–चित्रों के लिए कच्छे घर, ग्राम–सीमाएँ तथा दो एक उपवन दिखाने चाहिये। दुर्ग के दृश्य में पर कोटे की ऊँची दीवारे, उनमें बन्दूक चलाने के छेद, पहाड़ का दृश्य, परकोट का

ऊँचा द्वार तथा उसका घिराव आदि दिखाना चाहिए।[1]

प्रकृति चित्रण

चित्रकला के प्रमुख तीन विषय है · रूप–चित्र, आकृति–चित्र, और प्रकृति–चित्र। रूप और आकृति चित्रों की अपेक्षा प्रकृति–चित्रो का अंकन कुछ दुःसाध्य होता है। उसके लिए अभ्यास और अनुभूति की बडी आवश्यकता है प्राचीन भारतीय चित्रकला मे प्रकृति–चित्रो को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। ऐसे चित्र स्वतत्र रूप मे कम मिलते है . किन्तु सहायक भूमिका के रूप में अनेको बहुधा उपयोग मे लाया गया है। इस प्रकार के प्राचीन प्रकृति–चित्रो से अनभिज्ञ कुछ पाश्चात्य कलाविदों का कथन है कि प्राकृतिक दृश्यो के चित्रण में भारतीय चित्रकला अनभिज्ञ होते थे, किन्तु अजन्ता, ऐलोरा और वाद्य आदि के भित्ति चित्रों में प्राकृतिक दृश्यों का जैसा भावपूर्ण चित्रण देखने को मिलता है उसमे यह धारणा सर्वथा असत्य सिद्ध हो जाती है कि भारतीय चित्रकार इस दिशा में अनजान थे। वास्तव मे देखा जाय तो भित्ति चित्रों के जितने भी महत्वपूर्ण कला–मण्डल सप्रति सुरक्षित है वे सब के सब ऐसे स्थानों पर स्थापित किये गये है, जहॉ पर प्रकृति का एकान्त सहचर्य व्याप्त हैं उन महान कलाकारों को ऐसा मोहक स्थान चुनने के लिए निश्चित ही उनके प्रकृति प्रेम ने बाध्य किया होगा। इसलिए भारतीय कलाकार के अनतःकरण में प्रकृति प्रेम तो जन्म से ही अकुरित होता हैं और फिर चित्रकला–विषयक पुस्तकों में प्रकृति–चित्रों के सम्बन्ध में जो ठोस विधान निर्धारित किये गये है, उनसे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि भारत में प्रकृति–चित्रों के निर्माण की परम्परा का व्यापक प्रचार प्राचीन काल मे ही हो चुका था।

पहाड़ों का चित्रण करने के लिए उनकी चोटियॉ, झाड़ियों का समूह, स्थान–स्थान पर धातुओं के चिन्ह वृक्ष लताये, सॉंप और झरने आदि दिखाने चाहिएँ। जंगल के दृश्य में वृक्षों का समूह, घास, झाड़ियों वृक्षों और पक्षी और पृथ्वी

---

[1] वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, मिश्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इला० 1963, इलाहाबाद, पृष्ठ स० –95

पर कीडे–मकोडे चित्रित किया जाने चाहिये।

सूक्ष्मता का चित्रित न कर सदैव उसकी आत्मा को चित्रित किया जो काव्यमय, सौन्दर्य एव रसमय हैं।

पहाडी रजवाडो की भौगोलिक सरचना में यत्र–तत्र खडी चट्टाने स्पष्ट दिखायी देती है। इस प्रकार के परिवेश का पहाडी कलाकारों ने बाहुल्यता से प्रयोग किया है, अन्तर के बल यह है कि कही पर ये चट्टाने चित्र में बाहुल्यता से चित्रित हुयी जबकि कही पर इनका बहुत ही अल्प प्रयोग हुआ है।

चट्टानों के यथार्थ स्वरूप का अंकन कर उसके भावात्मक स्वरूप का ऐसा रूपांकन किया कि प्रथम साक्ष्य में मुझे कवि की कलात्मक कल्पना का आभास मिला परन्तु जब यथार्थ भौगोलिक पृष्ठ भूमि को देखा तो यह अनुभव किया कि इन चट्टानों की अभिव्यक्ति में उसकी तकनीकी सिद्धहस्तता के कारण उसकी चट्टानो की अभिव्यक्ति भी रागात्मक हो उठी।

राजपूत चित्रशैली का काँगड़ा चित्रशैली में अन्तर, विभिन्नता और विशेषता

भारतीय चित्रकला के इतिहास मध्यकाल परिवर्तन का युग है। 7वी शती मे मुसलमानों ने जब चीन पर आक्रमण किया तो वे अपने साथ कागज को अरब ले आये। दसवी शताब्दी मे जब मुगलो ने भारत पर आक्रमण किया तो यहाँ भी कागज का प्रचार हो गया। चित्रकला भित्ति से उतर कर कागज पर आ गयी और शीघ्र ही लेखन एव चित्रण दोनो कागज पर आरम्भ हो गया। जैन व अपभ्रंश शैली के चित्र इसके प्रमाण है। चालुक्ल राजा विक्रमादित्य द्वितीय के सोमेश्वर ने 1131 ईस्वी में अभिलाषितार्थ चिन्तामणि नामक एक ग्रंथ लिखा जिनका ऊपर नाम मान सोल्लास भी है जो बडौदा से तीन भागों में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ में ज्योतिष, काव्य, संगीत, वास्तुकला एव चित्रकला आदि विषयों पर विधिवत चर्चा की गयी है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण अन्तर्गत चित्रसूत्रम् में चार प्रकार के चित्रों का वर्णन किया है उत्तर मध्यकाल मे पाल शैली, जैन शैली, अपभ्रंश चित्रशैलियों के चित्रों में इतनी अधिक समानता है कि इनको पृथक करना कठिन है इस शैली पर अजन्ता की परम्परा दृष्टिगोचर होती है लेकिन मूलत· लघुपोथी चित्रण ही हुआ है। आकृतियों और मुद्राओं मे अजन्ता की चित्रकला का प्रभाव है। लाम्बा तारानाथ ने इसे नाग शैली के नाम से सम्बोधित किया हैं इन चित्रों का आकर 21¼ x 2¼ के पत्तों पर हुआ है। इन पोथियों के दोनों ओर के पटरों पर चित्र अंकित होते थे। उत्तर मध्य काल में कागज पर किये गये सर्वश्रेष्ठ उदाहरण जैन शैली मे मिलते है। भारतीय चित्रकला के इतिहास मे बौद्ध कला, मुगल कला एवं राजपूत कला में आपसी सम्बन्धता होने का श्रेय जैन शैली को हैं जैन चित्रकारों की कुशलता एवं विशिष्टता का दर्शन उनकी ताड पत्री पोथियों में मिला है, जिसमें सीमित एवं अल्प स्थान होने के बाजजूद इन चित्रकारों ने अति सूक्ष्य रेखाओं के माध्यम से महत्वपूर्ण एवं विराट भावों को समाविष्ट किया है। वस्तु पर चित्रित बसन्त विलास जगत प्रसिद्ध कृति वाशिंगटन की फेयर आर्ट गैलरी में सुरक्षित है जिसमें वस्त्रों पर जैनियों ने अनेकों

तांत्रिक देवी–देवताओ के चित्र अकित किये है। कल्पसूत्र मे भारतीय सगीत एव चित्रकला एव नाटक के महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। सूक्ष्य रेखाये विराट भावी को व्यक्त करती है, जैन कला मे लोक जीवन को सच्चे अर्थो मे अभिव्यक्ति, उनकी आकृतियों में रेखाओ और साज–सज्जा सभी में लोक सौन्दर्य एव लोक संस्कृति एव लोक संस्कृति के तत्व छुपे हैं।

10 वीं शताब्दी से लेकर 15 वी शताब्दी इस्वी तक के पॉच सौ वर्षों की प्राचीन परम्परा को जीवित बनाये रखने का श्रेय पॉल, जैन, गुजरात एवं अपभ्रंश शैलियों को है। इस युग में अधिकतर पुस्तकों के दृष्टान्त चित्र निर्मित हुये नालान्दा और विक्रमशिला इनके केन्द्र थे। गुजरात शैली, अपभ्रश शैली और जैन शैली का नाम इसलिये उल्लेखनीय है कि इनके द्वारा भारतीय चित्रकला का उज्ज्वल अतीत आलोकित होता है। 1924 ईस्वी में बरलिन म्यूजियम में सुरक्षित कल्पसूत्र की एक सचित्र प्रति के मिलने से गुजरात चित्र शैली के सम्बन्ध में जिज्ञासा जगायी। एन०सी० मेहता महोदय ने बसन्त विलास नाम 1451 ईस्वी संस्कृति गुजरात मिश्रित काव्य कृति उपलब्ध हुयी जिसका लिपिकायें 1451 हैं यह एक लम्बाकार कुण्डलीनुमा चित्रपट है जो कि कपडे पर बना हुआ है। इस चित्रपट पर 79 चित्र है। जिनका विषय रागमाला से सम्बन्धित है। वाशिगटन की फेयर आर्ट गैलरी में सुरक्षित बंसत विलास नामक कृति अपने ढंग की संसार भर में चित्रकला की अनुपम कृति है यह वस्तु पर ही चित्रित है जिसमें अनेक तांत्रिक देवी–देवताओं के वस्तुचित्र उपलब्ध हैं। 15वी शताब्दी में जैन मुनियों ने हजारों ग्रन्थों की स्वतंत्र रचना एवं प्रतिलिपि करके ज्ञान भण्डारों की समृद्धि में अपूर्व योगदान दिया। इसी समय सोने चादी की स्याही से बहुमूल्य चित्रों का निर्माण हुआ। 16वीं शताब्दी मे तैयार की गयी स्वर्णाक्षरों में कल्पसूत्र की एक प्रति का सन्दर्भ मिलता है जिसके हासिये पर रागरागनियों, तान मूछना, नृत्य तथा अनेकों भावों के चित्र नाम सहित अंकित है। इसमें ईरानी चित्रों की प्रतिकृतियों भी है।

15वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे खुरासा के सुल्तान हुसैन के सरक्षण मे "बिहजाद" नामक एक सुप्रसिद्ध चित्रकार जिसे पूर्व का रैफेल कहा जाता था। सुल्तान हुसैन का दरबारी चित्रकार था। बाबर ने भी बाबर नामा में इसकी प्रशसा की है। मुगल चित्रशैली मे जहागीर के शासन काल में महान परिवर्तन देखने को मिलता है। इसमे दो प्रकार की शैलियॉ–भारतीय और ईरानी चित्रशैलियो का सम्मिश्रण दिखाई देता है। अन्त. सौन्दर्य की अभिव्यक्ति जिन चित्रो मे दर्शित है उनमें भारतीय शैली को अपनाया गया है और बाह्य सौन्दर्य की अभिव्यंजन ईरानी शैली के माध्यम से हुआ हैं भारत मे जहॉगीर के शासन काल में मुगलशैली अपने चरमोत्कर्ष पर पहुॅची, उसमें रागमाला से सम्बन्धित अनेकों चित्रो का सृजन हुआ। भारतीय चित्रकला के इतिहास में मुगल शैली कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान है। नये सविधान, नये भाव विषयों का समावेश होकर भारतीय चित्रकला का सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक अभिउन्नति की दिशा में भी सन्तोष जनक कार्य हुआ। भारतीय साहित्य की लोकप्रिय कृतियों का अनुवाद और उनके दृष्टान्त चित्र मुगलों की स्थायी देन भारतीय चित्रकला के इतिहास के लिय चिरस्मरणीय है।

मुगलशैली की ठोस एवं सुन्दर पृष्ठ भूमि पर राजपूत शैली के संविधानो को लेकर पहाड़ी शैली और उसकी विभिन्न उपशाखाओं के जन्म के कारण भारतीय चित्रकला को एक नया आलोक मिला। पहाड़ी शैली को जीवनी तत्व राजपूत शैली से मिले किन्तु उसको संवैधानिक लोकप्रियता प्राप्त हुयी मुगलशैली में पहाडी शैली के निर्माण और उत्थान का श्रेय मुगल दरबार से निष्काशित कलाकारों को ही दिया जा सकता है। इस प्रकार भारतीय कला के सृजन एवं विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

अकबर ने इस तथ्य पर विचार किया और वह ऐसी सभ्यता का आरम्भ चाहता था कि जो हिन्दू–मुसलमान दोनों की संस्कृतियों के पास की ठहरती हो। इसका स्वरूप अकबर के मन में तैयार हुआ था। एक दिन संकल्प और एक दिन

कार्यरूप मे ही उसके जीव काल मे ही परिणित हो गया। अकबर का यह प्रयास चित्रकला मे निश्चित रूप मे मुखर हुआ और दो शताब्दियो तक बना रहा है।[1]

आइने–अकबरी के अनुसार, अकबर अपने दरबार मे चित्रकारिता और लेखनकला को स्वय देखता था। इस कार्य को भली–भाँति सम्पन्न करने के लिए राजस्थान, गुजरात, दक्षिण भारत, तथा पटना आदि अन्य स्थानों के कुशल तथा निपुण चित्रकारों को फतेहपुर सीकरी बुलाया था। प्रति सप्ताह का चित्रकारी का किया गया सम्पूर्ण कार्य, बादशाह के समक्ष दरोगा और कर्मचारियो के द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। चित्रकारो को चित्रकारी के लिए सभी तरह के साधन उपलब्ध रहा करते थे। अकबर उन व्यक्तियो को पसंद नही करता था जो चित्रकला से घृणा करते थे।[2]

डॉ० आनन्द कुमार स्वामी को राजपूत चित्रकला को मुगल कला से पृथक सत्ता पर स्थापित करने का श्रेय है। अकबर ने चित्रकला को दिशा दी है जो चित्रकला के विकास के इतिहास से कलम और शैली के रूप में प्रतिस्थापित हुई। इसके प्रमुख स्थन मारगाह, अजबाईजन, सुल्तानिया और तबरेज थे। यहाँ मंगोलों के गढ रहे है। इसके उपरान्त कला का विकास बुखारा ओ समरकंद में अधिक हुआ। कवि गायक, संगीत दार्शनिक, वास्तुकलाविद् प्रोत्साहित होते रहे है और इनका सम्मान सकरकन्द तैमूर की राजधानी में हमेशा रहा है। यही परम्परा बाबर के द्वारा भारत में आई। तैमूरी वेश में सन् 1419 में शाहरूख ने कला के ज्ञान के लिए ग्यासउद्दीन खलील अधिक प्रसिद्ध पर्सियन चित्रकार के मातहत एक शिष्ट मण्डल चीन भेजा था। भारत में आने वाले शिष्टमण्डल का नेतृत्व अब्दुल रज्जाक के हाथों था जो कि सन् 1492 से 1494 तक भारत में रहा। शाहरूख की चित्रशाला में 40 चित्रकार कार्यरत थे जो कि पाण्डुलिपियों का चित्रांकन मौलाना जफर के परिवेक्षण

---

[1] रघुनन्दन प्रसाद तिवारी, भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व, पृ० सं० –251
[2] रघुनन्दन प्रसाद तिवारी, भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व, पृ० सं० – 253

मे किया करते थे। बुखारा मे पन्द्रहवी शताब्दी मे सुल्तान हुसैन मिर्जा के शासन काल तक कलाओ का अभ्यास बढता रहा है। उमरशेख के समय मे सबसे बडा चित्रकार बिहजाद रहा है। बिहजाद के चित्रण मे व्यैक्तिकता को स्थान दिया है। 1506 मे बिहजाद के शिष्य और कलाकार सफरविद–राजवश के कर्मचारी हो गए। यह राजवश सही अर्थो मे सूफी था जिससे कि इनकी धार्मिक नीति का प्रभाव इन चित्रकारो की कृतियों पर भी पडा है।

बाबर का पिता तैमर और माँ मॅगोल शासक चंगेज वंश की थी। मीर शैय्यद अली (1539–42 ई०) द्वारा बनाया गया चित्र हुमायूॅ के समय का हैं। हुमायूँ को प्रगति मे योगदान किया है। सन् 1549 ई० में जब हुमायूॅ काबुल मे था तब तो ईरानी चित्रकार मीर सैय्यद अली और अब्दुल समद इसके खेमें के साथ ही थे। दिल्ली आने के उपरांत मीर सैय्यद अली के पर्यवेक्षण में "दास्ताने अमीर हमजा" का चित्रण हुआ इसका कुछ भाग इंडस्ट्रियल सग्रहालय वियाना मे सुरक्षित है।[1] हुमायूॅ की दिल्ली पुस्तकालय में मृत्यु के बाद दो चित्रों का विवरण प्रधानतः है। प्रथम चित्र में अकबर, हुमायूॅ की मृत्यु का समाचार सुनता हुआ दिखाया गया है और दूसरे चित्र में "अबुलमाली" को अब्दुल समद के द्वारा गिरफ्तार करते हुए दिखाया गया हैं इसके उपरांत लगभग 15 वर्ष राज्य व्यवस्थित करने मे लगे। इस बीच मे चित्र विद्या का स्थानीय रूप और परिवेश प्रखर होना प्रारम्भ हो गया। इस समय की कला में बिहजाद का प्रभाव है और रंग–शैली इरानी है, किन्तु आकृतियॉ भारतीय है। जैसे द्वारपाल, हाथी, वृक्ष, भवन, वन, पहाड़ और मानवकृतियॉ भारतीय वेशभूषा में चित्रित हैं। यहॉ भारतीय वेषभूषा को स्पष्ट करने से विस्तृत होता है कि यह आकार राजस्थान की संस्कृतिक का है जो कि राजपूत कला में व्यक्त हुआ है। इसके उपरान्त अकबर ने प्रायः गुजरात, राजस्थान, दक्षिण भारत पटना आदि स्थानों से चित्रकारों, वास्तु शिल्पकारों को राजकीय सेवाओं में नियुक्त भी किया था। इस

---

[1] रघुनन्दन प्रसाद तिवारी, भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व, पृ० सं० – 253

तरह जो भारतीय चित्रकार थे, उन्होने अपनी कृतियों में आत्मा को मिश्रित कर प्रस्तुत किया।

जहाँगीर के समय सन् 1610 ई० का चित्र, जिसके मध्य प्रकृति को मुख्य रूप से चित्रित किया है। इस चित्र की प्रधान आकृति एक वृक्ष की है, जिस पर अनेक कर रहे है। वृक्ष की पीठ पर चढता हुआ एक व्यक्ति भी चित्रित है चित्र की पृष्ठभूमि मे लगभग दो तिहाई भाग में वृक्ष का विस्तार है। शेष एक तिहाई में नीचे टेकडी, पहाडी, दूर के वृक्ष अल्पतः आकाश और श्रमभूमि को चित्रित किया है। यह चित्र जहाँगीर के समय के चित्रों जहाँगीर में प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम, श्रृद्धा और भक्ति थी जो कि उसके समय की चित्रकारी में प्रतिफलित हुई है। जहाँगीर के प्रकृति और जगत के प्रति सौन्दर्य भावना की दृष्टि को बोध और सवेदन अपने दरबारी चित्रकारों को कराया साथ ही इन चित्रकारों ने जहाँगीर के सौन्दर्यपरक दृष्टि को वास्तविक रूप प्रदान किया।

जहाँगीर अपने समय का कला मर्मज्ञ भी था। उसने समसामयिक अनेक ऐतिहासिक कला–कृतियों को अपने चित्र संग्रहालय में एकत्र किया था। बिहजाद स्कूल के सन् 1449 ई० के चार चित्रों को 150 रूपयों में खरीदा था।[1]

इसके समय में 'सर टामस रो' इंग्लैण्ड का राजदूत आया था। यह अपने साथ कुछ चित्र भी लाया था। जहाँगीर ने टामस रो के चित्रों को अपने कलाकारों को प्रतिलिपि करने को दी। दोबारा जब सर टामस रो को जहाँगीर ने उसके चित्रों को प्रतिलिपि के साथ उसके समक्ष रखा तब कुछ क्षण के लिए वह अपने मूल चित्रो को पहचानने से रह गया। शाहजहाँ के शासन काल में समरकंद से दो चित्रकार आए थे। शाहजहाँ ने चित्रकला के अपेक्षा वास्तुकला में अधिक दिलचस्पी दिखाई।

सन् 1658 ई० में शाहजहाँ के तृतीय पुत्र औरंगजेब ने गद्दी को हथियाना और अपनी कट्टर धर्म रिक्त नीति का प्रसारण किया फलस्वरूप ललित कला की राज्याश्रित को समाप्त कर दिया। दरबार में कलाओं को स्थान ने मिलन से

राजशाही के चित्रकार राजधानी छोडकर राज्य के सुदूर कोनों में बिखर गए। जयपुर राजशाही सग्रहालय मे उललब्ध अकबर कालीन रज्मनामा, मुगल राजशाही संग्रहालय के विग्रह का ही चिन्ह है। इस तरह से किया हुआ वितरण बदलती हुई प्रवृत्तियो का परिचायक है।

सन् 1732 ई० मे अवध के नबाबों ने दिल्ली से स्वतन्त्रा स्थापित कर लखनऊ को राजधानी बनाया। इसी तरह दक्षिण के राज्य भी स्वतन्त्र होने लगे थे। अतएव शासन का समस्त ध्यान युद्ध, विपल्लव और उसकी शाति मे ही केन्द्रित रहता था। शाहजहॉ के उपरात ऐसे कुछ कम ही चित्रों का सृजन राजशाही में हुआ हैं जिसका कि उल्लेख श्रेष्ठ कलागत चित्रों की श्रेणी में किया जा सकता है।[1]

अकबर के समय मे प्रसिद्ध कार्यो में रज्मनामा (आजकल जयपुर में) तैमूरनामा (बकीपुर मे), अकबर नामा (साउथकेन्सटन में), अमीर हमजा आदि उल्लेखनीय है।

अकबर की चित्रकला में चित्रों का सृजन सामूहिक रूप में होता था। कोई भी एक चित्र एक ही चित्रकार के द्वारा पूर्ण नहीं किया जाता था। चित्र के निर्माण मे पहला कार्य सीमा रेखाओ का होता था। इसके उपरान्त चित्र की शैली जिसे पर्सियन में 'तरा' 'तराह' कहते हैं निश्चित किया जाता था। इसमें चित्र किस तरह का बनता है यह निश्चित होता था। इसके बाद चेहरानुमा के पास चेहरों का निर्माण होता था। चेहरा की आकृति दी जाती थी। फिर सूरत वाले के पास समूची रेखाओं में चित्र तैयार होने के लिए जाता था। इसके बाद चित्र 'रंगमेजी' के पास रंग लेपन क्रिया को पहुॅचता था। इस तरह एक चित्र में अनेक हाथों का कार्य होता था। ललित कला की चित्र विद्या में इस तरह की विद्या दस्तकारी कहलाती है जो कि कला की संज्ञा ने हटकर हेय अर्थबोधक है।

---

[1] पर्सीब्रउन, इडियन पेटिग अण्डर मुगल रूल्स पृ० 80

जहॉगीर के समय के चित्रो को यदि देखा जाय तो उसमें हिन्दू और मुसलमानो की आकृतियो और पहिनावे में स्पष्ट अन्तर लक्षित होता है। झण्डो के स्वरूप मे सूर्य, सिह आदि चिहनाकित राजपूतों के है हिन्दू रमणियो के माथे पर सिन्दूर ओढनी, बेदा आदि अलकार है जबकि मुस्लिम रमणियों सिर पर गोल ऊँची टोपी पहने है। पगडियो मे भी अंतर है। वास्तव मे जहॉगीर जीवितवर्ता मे अधिक विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। इस कारण से उसके समय के चित्रो मे यर्थाथता है। जहॉ भी जहॉगीर जाता था अपने साथ चित्रकारो के एक दल को साथ ले जाता था। यर्थाथ चित्रण मे सूक्ष्य कलाकारो को ही चित्र–सेवा में नियुक्त किया करता था।

मुगल चित्रकारों ने व्यक्ति चित्रण में पर्सियन और राजपूत चित्रकला के गुण विद्यमान हैं पर्सियन ढ़ंग से सीमा बाध, रग और सज्जा है, तथा राजपूती ढंग मे परिवेश, आकृति और उनके तालमेल से निसृत लय है। पर्सियन ढग मे पशु–पक्षियों का स्वतंत्र रूप से चित्रण हुआ है।

राजपूत चित्रकला शैली के क्षेत्र के दक्षिण–पश्चिम में गुजरात अपभ्रम और जैन शैली में अंतर विवेचना का है। इनके विकास का स्थान एक ही है। बौद्धिकता का इस नामकरण से सम्बन्ध में यह आग्रह अवश्य है कि भिन्न–भिन्न सबोधनो को भ्रमित रखना, स्थान विशेष की कला के प्रति कठोरता है। वस्तुत. इस शैली के चित्र जैन धर्म के साथ ही साथ, मारवाड़, अहमदाबाद, मालवा, जौनपुर, अवध, उडीसा और नेपाल, वर्मा स्याम में उपलब्ध होते है।

इन प्राचीन चित्र कृतियो में अहमदाबाद में सुरक्षित 'कल्पसूत्र' भारतीय नाट्य, संगीत और चित्रकला इन तीनों की ही दृष्टि से बहुमूल्य ग्रंथ ठहरता हैं। इस ग्रंथ के चित्रो मे राग–रागनी, मूर्छना तान आदि की योजना संगीत शास्त्र के अनुसार है तथा आकाशचारी, पापचारी, भौमचारी को नियोजना भारत के नाट्य शास्त्र के अनुरूप है। चित्र में प्रस्तुत मुख मुद्रादि ह्रदयगत भावों को व्यक्त करने में

समर्थ है। रंगो के विषय मे ताडपत्र पर प्राय कम ही रगो का प्रयोग देखने में आता है। पीला रंग ही इस काल के चित्रकारो का प्रधान रग रहा है। वस्त्रों के चित्रो मे भी रग की सफाई का अभाव है। केवल स्थान विशेष पर रग दर्शाने के लिए रंग के धब्बे डाले है। कागज के चित्रों मे रगो का जमाव ताडपत्रो से ही अधिक सुरक्षित होता है।

इस युग के चित्रकारों ने भाव के सहज प्रकाशन के लिए रेखाओ को ही महत्व दिया है तथा उन्ही के सहारे सापेक्ष चित्रण की प्रचुरता प्रस्तुत की है।

रग विधान मे कुल मिलाकर लाल पृष्ठभूमि, श्वेत और नील का प्रयोग है। जैन चित्रकला में लाल रग का प्रयोग धार्मिक परिवेश को ध्यान में रखकर किया है। राजपूत चित्रकला में लाल रंग का प्रयोग श्रृंगार के उद्दीपन के रूप में किया गया है। पुरूष भूषा में श्वेत धोती तथा नारियों की भूषा चोली, चूनर और रंगीन धोती है। आभूषण में मुकुट और माला अतिव्यापक है। नारी सज्जा में टिकुली मुखपर,, कानों में कुण्डल, बाहों में बाजूबन्द, रत्नमालाएँ प्रमुख है।

दक्षिण शैली के चित्र जो कि लगभग सोलहवीं सत्रहवीं शती के निर्मित है, राजस्थान के राजपूत राजाओं के पास, उनके राजकीय चित्र भण्डारों में पाए जाते है। इस तरह के चित्रो का आयाम, जबकि राजपूत राजा मुगल सेनाओं के साथ दक्षिण पर युद्ध आक्रमण के सिलसिले में जाते थे। दक्षिण शैली का प्रमुख स्थान बीजापुर गोलकुण्डा है। बीजापुर का आदिलशाह सन् 1490–1510 ई० बड़ा ही कला प्रेमी था।

"नुजूम अल–उलूस" नामक प्रसिद्ध पुस्तक (1570) भव्य बीजापुरी शैली में इन्हीं के प्रश्रय में चित्रित हुई है। इनमें चित्रों की संख्या 876 है।



अध्याय - 5

काँगड़ा चित्रशैली में लय का प्रयोग और महत्व

- व्यक्तिगत रूपा-आकारों द्वारा लय का बोध।
- वस्त्राभूषण में लय का बोध।
- केश श्रृंगार के द्वारा लय का बोध।
- रंगों द्वारा लय का बोध।

काँगड़ा चित्रकला में लय तत्त्व का प्रयोग और महत्व

कॉगडा शैली के चित्र पहाडी चित्रकला के स्वर्णिम नमूने है। 16वीं शताब्दी से लेकर 19वी शताब्दी तक पहाडी क्षेत्रो में जो कला आंदोलन चला था उसका प्रतिफल कॉगडा शैली के चित्र हैं। कॉगडा शैली के चित्रों में लय तत्त्व का प्रयोग सर्वाधिक रूप मे प्रयुक्त हुआ है। रूप आकार अंतराल, रेखा, संतुलन, ताल आदि तत्त्वों का भी प्रयोग नवीन भावनाओं, अपूर्व विकास क्रम तथा नवज्योति की अभिव्यंजना मे लय तत्त्व का प्रयोग भित्ति–चित्रो तथा छदशास्त्र विषयक चित्र, रीतिकालीन साहित्य विषयक चित्र, रामानुजीय भक्ति सम्प्रदाय के राधा–कृष्ण सम्बन्धी चित्रों में सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है। नियमित गति को लय कहा गया है, जो प्रबल–अबल की भावना की जननी है। गति का यह बल अबल अनजाने ही प्रकट होता है। डॉ० कुमार विमल ने दो क्रियाओं के बीच पडने वाले अंतराल को 'लय' कहा है। डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्ती ने लय का अर्थ, क्रिया के पश्चात् या बीच की विश्रांति अर्थात् क्रिया विरति को 'लय' कहा है। आचार्य भरत ने लय को कालवृत माना है अर्थात् दो क्रियाओं के बीच में पडने वाला अंतराल लय कहलाता है। आचार्य रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लय एक संगठित, गतिशील शक्ति है, एडवर्ड मैकडोवेल के अनुसार लय में संकल्प एवं उद्देश्य है। लय के पीछे उसका मुख्य भाग विचार और शक्ति है यह एक अभिनय है जो काल के आंतरिक उत्तराधिकार के पात्र को अभिनित तथा प्रदर्शित करता है।

लय का सामान्य अर्थ है लीन होना, घुलमिल जाना, अर्थात् संयोग, एकरूपता अथवा मिलना। जब हमारा मन किसी वस्तु अथवा विचार में लीन हो जाता है, तो हम कह सकते हैं कि वह लय की स्थिति में हैं वाह्य रूप से किसी क्रिया और

आंतरिक रूप से किसी भाव के साथ तादात्म्य कर लेना ही लय है। जैसा भाव होता है उसी के अनुरूप शारीरिक चेष्टाये होती हैं। ये चेष्टाये गति और वाणी मे अपना स्परूप व्यक्त करती हैं। इसी से कलाओ में लय की सृष्टि सम्भव होती है। उसी को देखकर दर्शक भी लय का अनुभव करता है। इस प्रकार मानव मे उत्पन्न हुई लय कलात्मक माध्यम के सहारे पुनः मानव तक पहुँच जाती है।

दृष्टिगत रूपों-आकारों द्वारा लय का बोध

आकारो को एक नियमित और निश्चित अन्तर के उपरान्त बार–बार अकित किया जाता है तो उसमे क्रमिक गति का आभास होने लगता है जो दृष्टि को एक आकृति से दूसरी आकृति तक इस प्रकार ले जाती है कि दर्शक को अलग–अलग आकृतियो का आभास नही होने पाता। चित्र मे एक समान आकृतियों को बार–बार अंकित करने से गति को प्राप्त किया जा सकता है। गति से चित्र के प्रधान भाव को बल मिलता है। आकृतियों का मध्यान्तर अधिक नहीं होना चाहिए अन्यथा लयात्मक अनुभूति मे कमी आ सकती है।

कॉगडा चित्रो मे लय तत्त्व का खुल कर प्रयोग किया गया है अनेकों चित्रो में अंकित वृक्षो तथा आलेखनो में इकाइयों का आवर्तन मुख्यतया तीन प्रकार से हुआ है–

(१) क्षितिजवत्

(२) अनुलम्बत्

(३) कर्णवत्

क्षितिज के समान्तर आर्वतन तथा लम्बवत् तथा ऊर्ध्व मे आकृतियो में ऊपर से नीचे का अकन इन दोनों क्रियाओं से लय तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है।

कर्णवत् आर्वतन में आकृतियों को तिरछा चित्रित किया गया है जो गति का सूचक है। काँगडा चित्र शैली के अधिकांश चित्रों में स्थान पर क्रमशः बडे एवं छोटे होते हुए समूहों को अंकित किया गया है जिससे हमारी दृष्टि ऐसे आकारों के द्वारा गति का अनुभव करती है। यदि रेखाओं और आकृतियों में घुमाव देते हुए निरन्तर आगे बढ़ाया जाय तो उसमें विचित्र प्रकार की लयात्मकता से हमें भौतिक एव मानसिक सुख मिलता है। गतिशील रेखाएं सुखद अनुभव प्रदान करती है।

आचार्य नन्दलाल बोस ने इसे जीवन प्रवाह कहा है और यह रस निष्पत्ति मे निर्विवाद रूप मे लय की महानता प्रदान की है। यदि केन्द्रीय अथवा आकर्षण बिन्दु से सभी दिशाओ में गति को विकिर्ण करती हुयी आकृतियॉ अथवा रेखाएँ अकित की जायें तो लय उत्पन्न होती है। जैसे सूर्य की किरणों से चारो ओर आभा विकिर्ण होती है अथवा कमल की पखुडियॉ चारो ओर फैल जाती है उसी प्रकार लय की अनुभूति विकरण द्वारा विकसित हो सकती है या जब गति की अनुभूति केन्द्र से बाहर की ओर हो तो गति वाह्यमुखी होती है, किन्तु जब गति की अनुभूति केन्द्र से अन्दर की ओर हो तो अत·मुखी होती है।

दृष्टि कलाओं में लय का अर्थ रेखाओं रूपों और रंगो द्वारा व्यवस्थित ऐसे सरल एवं आवृत्तिमय, गतिमय पथ से है जिसके सहारे दृष्टि क्रमश· अग्रसर होती है।

पुनरावृत्ति द्वारा लय का बोध- जब किसी आकृति को एक निश्चित अन्तराल के उपरान्त बार–बार अकित किया जाता है तो उसमें क्रमिक गति के आधार पर लय का बोध होता है और दर्शक की दृष्टि को एक आकृति से दूसरी आकृति तक इस प्रकार ले जाती है कि अलग–अलग आकृतियों का आभास नहीं होने पाता।

मैटलैण्ड के अनुसार आवृत्ति से लय उत्पन्न होती है अतः चित्र में एक समान बार–बार चित्रण से लय तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है। आकृतियों का मध्यान्तर अधिक नहीं होना चाहिए अन्यतः लयात्मक अनुभूति में कमी आ सकती है। भारतीय लघु चित्रों में इस तत्त्व का खुल कर प्रयोग किया गया है। कॉगडा शैली के चित्रों में अंकित वृक्षो तथा आलेखनों से स्पष्ट होता है की इकाइयों या आर्वत्तनो से मुख्यतः तीन प्रकार से लय का बोध हो सकता है। आकृतियो के क्रमिक रूप से छोटा बडा ऊपर नीचे और तिरछे आकारों से लय का बोध हो सकता है।

इसी प्रकार यदि किसी स्थान पर क्रमशः बड़े एवं छोटे आकृति समूह अंकित किये जाये तो उसमें आरोह अवरोह की अनुभूति होती है और दर्शक की दृष्टि से ऐसे आकारो से शीघ्रता से चलती हुई लय का अनुभव होता है।

जब किसी आकृति घुमाव मे देते हुये उसे निरन्तर आगे बढाया जाता है तो उसमें विचित्र लयात्मकता उत्पन्न होती है इस लहरदार गति से हमे भौतिक एव मानसिक दोनो सुख मिलते है। दृष्टिपथ सीधे और कोणीय होने से गतिशील रेखाये दृष्टि को सुख देती है। आचार्यनन्द लाल बोस ने इसे जीवन प्रवाह कहा है जिसमे रस निरूपण की महान क्षमता होती है।

चित्रकला मे रूप और आकारो द्वारा कॉगडा चित्रकला में आकृति मे घुमाव देते हुये उसे निरन्तर आगे बढाया गया है जिससे उसमे विचित्र लयात्मकता उत्पन्न हो गई है। इस लहरदार गति से भौतिक एवं मानसिक दोनों सुख मिलते है यदि केन्द्रीय बिन्दु से सभी दिशाओं में गति को विकीर्ण करती हुई आकृतियॉ तथा रेखाएँ अकित की जाये तो लय उत्पन्न करती है और सन्दौर्न्यानुभूति मे प्रभाव पडता है। कॉगडा शैली के चित्रों मे स्त्री आकृतियों मे दो तरह का चित्रण मिलता है। एक में तो यथोचित गोलाई, गढ़नशीलता तथा सुडौलता है। दूसरे प्रकार की मुखाकृतियो की गढ़नशीलता में कुछ कमी आ गई है परन्तु अधिकांश स्त्रियो के रूप विन्यास मे कलाकार ने कमाल कर दिया है। यौवन और लज्जा से पूर्ण, गुलाबी चेहरा सर्वाधिक प्रभावशाली है। चेहरो के निर्माण में कोमल छाया का भी प्रयोग किया गया है। उँगलियो मे लयात्मकता है। नारियों के केश नागिन की भॉति लहराते काले रग मे बनाये गये हैं। यह केश पारदर्शी सफेद दुपट्टे में नागिन का भ्रम उत्पन्न करते हैं। जो विशिष्ट लय का बोध कराते हैं। ये मुखाकृतियों के निर्माण में विशेषत· एक चश्म चेहरों का प्रयोग मिलता है। कॉंगड़ा का चित्रकार नारियों के चित्रण में पूर्णतया सतर्क रहा है। वह भारतीय परम्परागत आदर्श रूप को ही चित्रित किया है।

वस्त्राभूषण में लय का बोध

कॉगडा चित्रो में मानव रूपो को अद्‌भुत प्राकृतिक परिप्रेक्ष्य मे दर्शाया गया है। देखे– अनदेखे रूप कलाकार की चेतना को आच्छन्न करते हुए चित्रित किए जाते थे। उनमें असाधारण प्रतिभा नेत्रशक्ति तथा हस्त नैपुण्य अपेक्षित था। 1775 मे कटोच राजवश के महराजा संसार चन्द के समय मे कॉगडा कला मूर्धा पर पहुँच गई। इसके राज्यान्तर्गत नादौन एक सुरम्य जगह थी जहाँ के बारे में प्रसिद्ध था 'आएगा नादौन, जाएगा कौन'' । वहीं उसकी सुकेन वाली रानी ने एक भव्य मदिर की स्थापना की थी जिसकी प्राचीरों पर आकर्षक भित्ति चित्र सज्जा थी एक सुखद चहक भरे वातावरण मे कॉगडा कलम पनपी। पर्वतीय प्रदेश मे बसने वाले ग्रामीण के सीधे–सादे जीवन, उनकी धार्मिक मान्यताएँ, घेरलू रहन–सहन की अकृत्रिमता ने कला को लोकोन्मुखी बना दिया। प्राकृतिक सुषमा के दिग्दर्शक हरे भरे लहलहाते मैदान छोटी–मोटी पहाड़ियॉ, पीपल और बरगद के वृक्ष, आम्र निकुंज, लहराते–बलखाते, नदी–तप नाले, सघन झाड़ियों एवं वृक्षों की ओट मे एकांत कॉगड़ा कला में पहाडी संस्कृति के समूचे गुण समाहित हैं– उन्मुक्त, जीवनदायिनी, प्रवहमान, निर्मल, समत्व लिए अर्थात् सभी को अपनाते, आत्मसात करने की क्षमता एवं व्यापकता को प्रतीक, फलतः कलाकारों की विह्वल आनदानुभूति आध्यात्मिकता में परिणत होकर तो प्रकट हुई ही, उन्होंने हाट–बाजारों और रोजमर्रा के दृश्यों को भी सफलतापूर्वक अंकन किया। दैनिक जीवन के कितने ही चित्रों में दूर–दूर तक फैली हरीतिमा, पक्षियों और पशुओं का बहुविध चित्रण इस प्रकार कॉगडा कलाकारों ने अपने देश एवं घरू संस्कृति का प्रतिनिधित्व किया। राधा और कृष्ण को नायक–नायिका मानकर श्रृंगार का पूर्ण वैभव प्रदर्शित किया गया है। संगीत रसिकों ने स्वर के माधुर्य का आस्वाद तो लिया था, पर तूलिका के जादू को न पकड सके थे। रंगों की मोहकता ने मानों राग–रागिनियों को सजग कर दिया। रागमाला में संगीत और चित्रकला एकाकार हो उठे। छः मुख्य रागों और उनमें सम्बन्धित छत्तीस

रागिनियो रागों की स्त्री दशाएँ है और उनका कुटुम्ब है। प्रमुख दृश्य एक रागिनी का वाहक है और चारों ओर का वातावरण भावात्मक साज–सज्जा के साथ नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करता है। इन कलाकारो ने इस क्षणिक शाश्वत को साकार किया। ऐहिक सान्निध्य की अपामिक आकांक्षा ने प्रेम के मांसल रूप को आध्यात्मिकता मे परिणत कर दिया। परम पुरूष कृष्ण और जीवात्मा राधा इनके परस्पर एकीकरण में परमात्मा और जीवात्मा प्रेम और सौन्दर्य पुरूष और प्रकृति का सम्मिलन है। ब्रह्म और आत्मा की एकता महतर मे जल बिदु का विलय है, अतएव राधा–कृष्णा के रूप चित्रण मे अर्थ है– साधक की चेष्टाओं का चित्राभिव्यंजन जहॉ सामान्य चेतन से दिव्य चेतना में ही ईश्वर के अस्तित्व का प्रतिबोध हो सकता है। साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर श्री कृष्ण और उनकी स्वरूपभूता आधारशक्ति, आहलादिनी– श्रीराधा दोनों के अन्तर मे शत–सहस्त्र प्रेम की धाराओं का उन्मेष होता है। स्नेह, मान, प्रणय, अनुराग की परम परिणति के महाभाव की सर्वोच्च घनी मूल रसेश्वरी राधा है। दोनों में होड़ सी लगी रहती है। ज्यों–ज्यों राधा के हृदय मे यह प्रेम सहस्त्रगुना हो उमड़ता है त्यो–त्यो कृष्ण की नित–नई लीलाओं का भावसिंधु दूने वेग से तरंगित हो उठता है। राधा–कृष्ण एक दूसरे के पूरक है। काँगडा कलाकारों ने प्रेम की व्यंजना दैत से अद्वैत की ओर है। राधा–कृष्ण के प्रेम की कल्पनाओ ने भौतिक प्रेम को पारलौकिक प्रेम की रहस्यमयता प्रदान की है। कृष्ण की विविध लीलाएँ इसी भावना और उद्देश्य को चित्रित की गई। मन के स्तर पर खडे होकर, बुद्धि और प्रज्ञा के आयतन मे आवृद्ध होकर उनकी सहज क्रीड़ाओं को हृदयमय नहीं किया जा सकता वे तो मन–बुद्धि तर्क–वितर्क से परे है। कॉगड़ा चित्रकारों ने हृदयगत् भावनाओं और वास्तविक अनुभवों को दर्शित करते हुए भावों में चित्र आंके है। नायक–नायिकाओं की भी विविध मनोदशाओं, के लिए क्रीड़ा और जीवनोल्लास को व्यंजित किया गया। भाव और सौन्दर्य की अनुभूति के योग से उनके पर्ण्य–विषय बड़ी ही मधुरता और सच्ची लगन से चित्रित किए गए हैं। कहना न होगा कि ये

कॉगडा कलाकार अंतवृत्तियो के निरूपक, कलागत सौन्दर्य के नाना स्वरूपो के संवेदन शील द्रष्टा, लौकिक और अलौकिक प्रणय–लीलाओं एव सयोग–वियोग की अंतर्दिशाओं के मार्मिक चितेरे प्रेमरस से परिपक्व भीतर की उमगों मे बैठने वाले और कला की चारू–रम्यता को रहस्यमय रंगों में सजाने वाले सच्चे कला मर्मज्ञ थे। इस समय भॉति–भॉति के प्रयोगों का उत्साह और नित–नये सृजन की तीव्र लगन थी, अत इनके द्वारा सृजित चित्रो मे बेहद स्फूर्ति, ओज एवं गतिशीलता है। रंगो में चमक एव गमक, नायक–नायिकाओ की आकृतियॉ बडी आकर्षक, सुडौल मुखाकृति, विशाल नेत्र, कुंचित भग, नुकीली नाक, उभरे कपोल, चौडा माथा परम्परागत वेशभूषा, धोती तथा पगडी–साफे में चित्रित किए गए हैं। चटक रंगों की पोशाक मे इन गोरी, सुन्दर आकृतियों ने एक महक भर दी जिनसे अन्य पहाडी राजा और उनके बहादुर मनचले सामन्तगण भी अभिभूत हो उठे। मूक मुद्राओं के चित्रण से ऐसा लगता है जैसे आकृतियॉ कुछ कहना चाहती हैं, अपने मनोभावों को प्रकट करने की इच्छुक है, चूडियों और आभूषणों से भरे हाथों के संकेत न जाने कितने रूमानी स्वरूप व्यंजित करते है।

चित्रकला मे लय का अर्थ रेखाओं, रूपो अथवा रंगों द्वारा व्यवस्थित किसी ऐसे सरल एवं सुसम्बद्ध आवृत्तिमय तथा गतिमय पथ से है जिसके सहारे दृष्टि क्रमशः अग्रसर होती है। यह गति पुनरावृत्ति क्रमिक आरोह अवरोह, अविरल रेखा प्रवाह और विकरण की स्थितियों मे लयात्मक हो सकती है।

कॉगडा शैली के नारी और पुरूष आकृतियों में दो तरह का चित्रण मिलता है। एक में यथोचित गोलाई, गठन शीलता तथा सुडौलता है। दूसरे प्रकार की मुखाकृतियों की गढनशीलता में कुछ कमी आ गई है। परन्तु अधिकांश स्त्रियों के रूप विन्यास मे कलाकार वे कमाल कर दिया है।

अधिकांश स्त्री आकृतियों को लंहगा, कंचुकी का आस्तीनदार चोलियॉ, पारदर्शी दुपट्टा, लहराता हुआ चित्रित किया गया है। जो दर्शक को सहज ही

गतिशीलता का बोध करता है और दर्शक या प्रेक्षक को लय का बोध हो जाता है वस्त्रों की सिकुडन उनका फहराव आदि मे यथार्थता दिखाई देती है फिर भी वस्त्रो की सिकुडन और फहराव मे मध्यम गति का आभास होता है। क्योंकि प्रेक्षक या दर्शक की दृष्टि एक क्रमबद्ध रूप मे चलती है यह कॉगडा चित्रकारों की अद्‌भुत क्षमता है। चित्रकार ने ऐसा क्रम प्रस्तुत किया है कि दर्शक को एक निश्चित क्रम से देखने पर क्रमागत लय का आभास होने लगता है।

केश श्रृंगार के द्वारा लय का बोध

केश श्रृगार मे लहरदार गतिशील रेखाकन चेतना का प्रतीक है। कॉगडा चित्रशैली मे केश श्रृगार कई प्रकार से चित्रित किये गये है जैसे तरंग केश, घुँघराले केश के निर्माण मे रेखाओं के उतार चढाव इतने महत्वपूर्ण जिसकी गतिशीलता लयात्मकता उत्पन्न करती है। कॉगडा चित्रशैली में लम्बे लहराते केश आदि केश सज्जा के अनेकों उदाहरण है जिसमें दृष्टिगत लय का बोध होता है।

कॉगडा चित्र शैली में केश विन्यास की जो रीतियॉ प्रयुक्त है उनसे आधुनिक भारतीय नारियों को केश श्रृंगार की प्रेरणा मिलती है। कॉगडा के चित्रो में नारी को नायिका का स्थान दिया गया है। जिसे मानवीय रूप में चित्रित कर सैद्धान्तिक रूप मे चित्रण हुआ है जो सारभौमिक प्रतीक है। कॉगडा के चित्रों मे जो सीमाहीन सौन्दर्य व्याप्त है उसकी व्यजना का साधन नारी है और ऐन्द्रिय आकर्षण केन्द्र बिन्दु है। इसके अतिरिक्त वह गौरव और गरिमा की विभूति है। कॉगडा चित्रकला में जो केश विन्यास की रीतियॉ प्रयुक्त है उनसे आधुनिक काल की नारियो को केश श्रृंगार की प्रेरणा मिलती है जैसे लम्बे लहराते केश, तरंग केश, घुँघराले केश के अनेको उदाहरण हैं। काँगडा शैली के चित्र राग सारंग में लम्बे लहराते केश रास लीला 1740 ई०वी० भागवत पुराण से सम्बन्धित पहाड़ी शैली का रास लीला के कृष्ण और गोपिकाओं के केश को तरंगित किया है। कॉगड़ा शैली की रागिनी टोडी के चित्र में लहराते केश, रागिनी गुणकली, रागिनी कामोदी, रागिनी वसन्ती के केश श्रृंगार में लम्बे लहराते केश चित्रित किये हैं। जिसमें सुकोमल आह्वान रेखाये खींची गयी है जो वस्त्रों की फहरान आदि का चित्रण उनका प्रवाह मन के भावानुसार दिशा में रेंखाकित किया गया है एक वस्तु की रेखाएं अन्य वस्तुओं की रेखाओं की गति के अनुकूल अंकित हुई है इस प्रकार सम्पूर्ण चित्रफलक के रेखा प्रवाह में एक सामाजस्य उत्पन्न हो गया है।

रंगों द्वारा लय का बोध

कॉगडा चित्रकला मे सूर, केशव, मतिराम, देव, बिहारी के काव्य मे जो उपमाएँ, उत्प्रेक्षाएँ, भाव–भेद–रसादि, सौन्दर्य–सुषमा, और कौतूहल उत्पन्न करने वाले उदात्त भाव थे उन्हीं को लक्ष्य बना कर इन्होने रंगों और रेखाओ मे ढाला। रीति की समस्त सामग्री जो रीति ग्रंथकारो की थाती थी वही पहाडी कलाकारों की कला–सामग्री बनी। प्रेम, सौन्दर्य, श्रृगारिक भाव, राग–रग, जीवन की मस्ती, काम–क्रीडाएँ, आर्द्र सुकोमल भाव और माधुर्य व्यजित करने में जो विशेष चमत्कार और आकर्षण अपेक्षित था वह एक निराली अलंकृति और सज्जा के साथ, जिसमें पर्वतीय प्रदेश की सुषमा और मृदु झंकार गूँजती थी, इनकी तूलिका से सजीव हो उठा। लगता है–रंग जैसे दृश्यों के साथ घुल–मिल गए है।

अठारहवीं शती० ई० में श्री नाना लाल चमन मेहता के संग्रह में रगों की मोहकता ने मानो राग–रागिनियों को सजग कर दिया। 'रागमाला' में चित्रकला और संगीत एकाकार को उठें। पुष्पों की मुस्कान और बसंत श्री में, पत्तों की मरमर ध्वनि, कलकल करती सरिताओ, चहचहाते पक्षियो, कोकिल की मधुर कुहुं–कुहुं, वर्षा की रिमझिम, आकाश पर छाये ने मेघो के बनते–मिटते आकारों, निर्झर की मधुर झंकार ज्योत्स्ना और प्राकृतिक रगो के उभार मे सबसे बढकर पहाड़ी प्रांतर की चतुर्दिक फैली हरीतिमा के साथ–साथ मानों मधुर रागिनी बज उठी है। रंग उभर कर लय मे समा गए हैं और चित्र की सजीवता ने स्वरों को मूक बना दिया है। छः मुख्य रंगो और उनसे सम्बन्धित छत्तीस रागिनियों को चित्रों में व्याख्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।[1]

1678 में राजा कृपाल पाल ने पश्चिमी हिमालय में रावी तट पर 74 गाँवों की एक बहुत छोटी रियासत बसोहली को अधिकृत किया, जहॉ बड़े–खरोश से यह इन्द्रधनुषी कला पनपी और जिसके रंगों की ललक ने समूचे पहाड़ी अंचल को

---

[1] Dudley and Farnay The Humanities p 170.

अभिभूत कर लिया।

बसोहली कलाकारो ने बालक श्री कृष्ण, दुष्टों के सहार श्री कृष्ण गोपगोपियों के साथ तरह–तरह की लीलारत श्री कृष्ण तथा प्राण प्रियतमा राधिका के प्रेम मे मतवाले श्री कृष्ण–ऐसी अनगिनत भगिमाएँ चित्रित की। भानुदत्त की 'रस मंजरी' के दो खण्डों का चित्रण इस युग की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

कॉगडा चित्रकला में इस समय भॉति–भॉति के प्रयोगो का उत्साह और नित–नये सृजन की तीव्र लगन थी, अत· इनके द्वारा सृजित चित्रों मे बेहद स्फूर्ति, ओज एव गतिशीलता है। रगो में चमक एवं गमक, नायक–नायिकाओ की आकृतियॉ बडी आकर्षक, सुडौल मुखाकृति, विशाल नेत्र, कुंचित भ्रू–भंग नुकीलीनाक, उभरे कपोल, चौडा माथा, परम्परा वेषभूषा, पुरूष अधिकतर पाजामा अथवा घेरदार जामा, या धोती तथा पगडी–साफे मे चित्रित किये गए हैं तो नारियॉ छापेदार, कढे कामदानी, गोटा, बूटी, जरी, विशेष चमक एवं धारीदार भारी घघरे, चोली, चुनरी अथवा सूथन, चोली व पारदर्शक पेशवाज पहने दिखाई गई है। चटक रंगो की पोशााक मे इन गोरी, सुन्दर आकृतियों ने एक महक भर दी जिनसे अन्य पहाड़ी राजा और उनके बहादुर मनचले सामन्तगण भी अभिभूत हो उठे। मूक मुद्राओं के चित्रण से ऐसा लगता है जैसे आकृतियॉ कुछ कहना चाहती हैं, अपने मनोभावों को प्रकट करने की इच्छुक हैं, चूडियों और आभूषणों से भरे हाथों के संकेत न जाने कितने रूमानी अकथ्य व्यंजित करते हैं।

राजा अमृत पाल ने सुप्रसिद्ध महल का निर्माण कराया जो पहाडी प्रदेश का महान् आश्चर्य माना जाता है। इसमें नक्काशी व रंगत राशी का काम और सुन्दर भित्ति–चित्र सज्जा कराई गई जो अब दुर्दशा–ग्रस्त है, फिर भी उस चहकती रंगीन दुनियां का आभास तो करा ही देती है।

सहस्रों पहाड़ी चित्र उस समय बनाये गए जब कि कागज उपलब्ध न था और चित्रों की पूँछ न थी। ज्यादातर चित्र हिरण की खाल पर बनाये जाते थे। एक

मटियाला किस्म का पत्तर भी इस्तेमाल किया जाता था, जिसे कडी मेहनत से घोटकर और सफेद रग पोतकर चिकना बनाया जाता था। फूल–फल एवं वनस्पति तथा खनिज व रासायनिक पदार्थो से रग तैयार कर उन्हे ऐसा पक्का बनाया गया है। जिनकी कई सदियों बाद आज भी आभा नष्ट नहीं हुई है। तूलिका मे पशुओं की पूँछ के बारीक बालों का उपयोग किया जाता था। अत्यत सूक्ष्म प्रवहवान रंगो के एक या दो बालो की कूची प्रयुक्त की जाती थी। उनके सृजन मे स्वयं भूत प्रेरणा अधिक थी।

"माणकू" को जैसा चटकीला विधान पसन्द है वैसे ही चैतू को हल्के के और सादे रग अच्छे लगते है। उसके पोशाक का आलेखन अद्वितीय है। पात्रो की वस्त्र–सज्जा दुग्ध सी धवल होती है, रंग कहीं बहुत हल्के होते हैं, किन्तु विशेषता यह है कि चुनरी या साडी की हर सिलवट में समयानुकूल व्यंजकता है। उसका रेखाकन सूक्ष्म, कोमल और गतिशील है। पात्रों की रूपरेखा भी आकर्षक और भावपूर्ण होती है।"

रंग और रेखाओं द्वारा भी लय की उत्पत्ति की जा सकती है। चटकीलें और धुधले रंगो के व्यवस्थित प्रयोग से कलाकार दर्शक को दिशा गति प्रदान कर सकता है। मात्र रेखाएं और रूप ही लय पैदा करने में समर्थ नही हैं, उन्हें रंग की भी आवश्यकता होती है। जीवन मे जिस प्रकार विश्राम, यात्रा, कार्य और शयन आदि का महत्व है, उसी प्रकार लय में भी तनाव, विश्राम आदि का प्रयोग होता है। लय के द्वारा जीवन के प्रत्येक पक्ष को गति मिलती है। लयहीन जीवन मृत्यु का घोतक है, यह प्रलय में ही सम्भव है। यहॉ तक कि जीवन की पूर्णता ही लय के बिना समाप्त हो जाती है। लय की पुनरावृत्ति से जीवन की गति का मार्ग तो बनता ही है और सुगमता के साथ विश्राम भी मिलता है। जीवन को यदि लय की श्रेणी में रखा जाय तो लय और क्रम का महत्व सामने आ जाता है। संगीत हो या जीवन, चित्र हो या मूर्ति, लयविहीन होने पर कृति निष्प्राण लगती है। बाह्य प्रभाव लय की गति पर

अपना असर छोडते है जिनमे प्रतिकूलता एवं अनुकूलता का प्रभाव होता रहता हैं। मनुष्य अपनी इच्छाओं और भावनाओ का विकास इसी क्रम मे करता चलता है जिससे उसकी इच्छाओ का विचित्र संग्रह बन जाता है। प्रेम, घृणा, विनाश के भाव लयात्मकता के क्रम मे फिर–फिर आते है, और मनुष्य आंतरिक रूप से उन्हें महसूस करते हुए भी बाह्य उसका जीवन क्रम सुलभ, व्यवस्थित एव लयात्मक हो जाता है। प्रत्येक जीवनधारी के लिये संगीत प्राणदायक होता है। जब सगीत से सौन्दर्य बोध की तृप्ति होने लगती है तो लय के महत्व को समझकर आनंद प्राप्त करने लगते है। अपने भावों और अनुभावों को व्यक्त करने के लिए कलाकार स्वयं को ससार से खीचकर ध्यान द्वारा एकाग्र करता है। भक्त और साधक भी ईश्वर की महिमा को जानने के लिए लय में खो जाते हैं। संसार के क्रम मे सुबह और शाम, दिन और रात, मास और ऋतुएं आदि भी क्रम में लौट–लौट कर आते हैं। यह भी एक सम्पूर्ण गति का ही रूप है। मृत्यु और जीवन में यही अन्तर है कि जीवन लययुक्त होता है और मृत्यु लयहीन। क्रमवद्धता और समन्वयता संगीत और लय के दूसरे नाम है। इनके होने से शांति, संतोष और विश्राम का अनुभव होता है। यहां तक कि जिसे हम सौन्दर्य अथवा आनन्द की अनुभूति कहते है, वह भी लय का एक रूप है। सरगम की तान, रूप का सौष्ठव, रंगो की क्रीडा, रेखाओं का प्रभाव, छदों का छंदत्व, भाव की भंगिमा तथा मनुष्य की मन.स्थित आदि में लय का स्वरूप छिपा है। इनमें लय के मिलते ही आनन्द की सृष्टि हो जाती है। यहां तक कि स्वत. ही श्रोता संगीत के साथ, दर्शक चित्र के साथ चल पड़ता है। कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो नाचते हुए मोर को उसकी गति के लयात्मक रूप को देखकर आनन्द से ओत–पोत न होगा। हमे कदाचित यह न मान लेना चाहिए कि लय का अर्थ पुनरावृत्ति है बल्कि नवीनता का संचार भी लय जीवन्त करता है। मशीन और जीवधारी की भंगिमाओं का अन्तर इससे स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार लय जीवन में प्रत्येक क्षण क्रिया में इस प्रकार व्याप्त है कि जीवन का संचालन उसके साथ होता रहता है जो अन्तर्मुखी

है, पर जीवन को दर्शाए रहती है।

कॉगडा चित्रकला की कल्पना रंगों के माध्यम से ही एक चित्र के रूप में जीवन्त होती है। ऐसे ही प्रेम के रंगो से रंगी तूलिका से जन्म लिया कॉगडा चित्रकला ने, जो स्वय मे अद्भुत और आकर्षक है।

कॉगडा चित्रों के कलाकार जयदेव, बिहारी और केशवदास जैसे कवियो की रचनाओ से अपने विषय लेते थे। इन कवियों ने राधा–कृष्ण के प्रेम का अपने काव्य में विस्तृत वर्णन किया है। इसी विषय से प्रभावित व प्रेरित होकर कांगडा के चित्रकारो ने अपनी चित्रकृतियां बनायी। संस्कृत व हिन्दी साहित्य की कृष्ण लीला के प्रसंगो और मुगलकालीन काव्य सौन्दर्य के सम्मित्रण ने इस चित्रकला मे एक नयी शैली को जन्म दिया। पहाडी अंचल मे बिखरी खूबसूरती के परिप्रेक्ष्य में राधा कृष्ण की प्रेमलीला का अंकन इन चित्रों में बखूबी हुआ है। सुन्दर सतरगी से सुसज्जित ये चित्र अपने आप में अद्भुत आकर्षण रखते हैं।

कॉगडा चित्रों में रगों की दीप्ति व रमणीयता अद्वितीय रूप में प्रकट हुई है। मानवाकृतियो को छोड अन्य सभी कृतियों मे प्रायः सफेद हरा व नीला रंग भरा गया है, मानवाकृतियॉ प्राय गर्म या प्रखर–रंगों में बनी हैं। रगों के सम्बन्ध में जे०सी० फ्रैंच ने ठीक ही कहा है–

18वीं शती में काँगडा चित्रकारों की पट्टियों पर मानों ऊषा काल और इन्द्र धनुष के रंग थे। चित्रों में रेखायें लयपूर्ण हैं।

(क) राग बसन्त (काँगड़ा शैली 18वीं शताब्दी) :

अध्ययन चित्रों मे मानवाकृतियो में क्रियाशीलता में लय तत्व के सृजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। कृष्ण की आकृति चित्र को बांई ओर तिरछा प्रस्तुत करके गतिमयता प्रदान की है, बायें हाथ को ऊपर की ओर उठाकर और दाहिने हाथ को तिरछा फैला कर, बायें पैर को ऊपर उठाकर के लता हस्त कर के और सिर को दाहिने ओर घुमाव कर गतिशीलता को प्रस्तुत किया हैं कन्धे पर लहराता हुआ पारदर्शी दुपट्टे को और गतिशील

बना दिया है। ढोलक और मजीरा वादितों के हाथो की स्थिति कृष्ण के पजो की स्थिति के समान दोनो मे गतिशीलता और शीलता दिखाई गई है। ढप बजाने वाली हाथों की थाप को इसी की सगति मे दिखाया गया है। इस प्रकार आकारो के द्वारा लय का बोध अथवा आभास मिल जाता है।

(ख) बसन्त रागिनी का चित्र :

रागिनी बसन्त के चित्र में मानवाकृतियो में क्रिया शीलता मे लय बोध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गहरे नीले मे आकृति के केन्द्र में स्थिति होने के कारण तथा पीले रग के क्रियाशीलता लय का द्योतन करती है कृष्ण की आकृति नृत्य मुद्रा मे है। दोनों हाथ ऊपर बांई दिशा में तथा मुख्य दाई दिशा पर है। दोनो पैर घुटने पर मुडे धरती तल पर रखे हुये जिससे उछल कर गोलाई में नृत्य करते हुये स्थिति में व्यजित किये हुये है। आकृतियो मे हाथो की स्थिति तथा कृष्ण के पंजो की स्थिति समान है। दोनों क्रियाशीलता की गति अथवा गतिशीलता एक समान दिखाई गई है।

ढप को बजाने वाली के थाप को इसी सगत मे दिखाया गया है। इस प्रकार इन मानवकृतियों में क्रियानान्तर विश्रात शान्ति मूल लय का आभास दिया गया है। साथ ही लय का बार–बार एक ही लय की कल्पना से वर्तुलाकार आकृति में ध्वनित की गई है।

चित्र के क्षितिज पर दोनों ओर एक समान अलकारी दिखाया गया है जो इसे संगत मूलक लय का आभास होता है। यही सामन्जस्य नीचे रखी पीचकारो तथा लय मही गोपिकाओं की संख्या तथा नीचे रखे कलशों मे है। चित्र के रूप विन्यास में जो रेखायें खींची गई है उनका प्रवाह मान भावानुसार ही है। विशेषता वस्त्रों की फहरान आदि में जो रेखायें खींची गई है वो बहुत ही गतिशील लयात्मक रेखायें है जहाँ कही ओजमय रेखाओं का प्रयोग हुआ है वहाँ भाव को सशक्त रूप में व्यक्त किया गया है।

लयात्मक अभिव्यक्ति के चित्रों में राग–रागनियाँ अपने प्रवाहमान में महत्त्वपूर्ण है। कॉगडा शैली में पुरूषों की अपेक्षा नारी अंकन अधिक हुआ है।

1694 ई० में बसौली चित्रों में 'रस मंजरी' का चित्र प्राप्त हुआ इसमें मानव आकृतियों के चित्रों में लयात्मक अभिव्यन्जना की गई है।

कॉगडा शैली के राग बसन्त नामक चित्रो में मानवाकृतियो में गतिशीलता और क्रियाशीलता को दिखाकर लय की अनुभूति कराई गई है। सभी मानवाकृतियॉ गतिशील प्रतीक हो रही है। यही क्रियाशीलता लय का देवतन करती है।

हाथो को फैलाकर चुटकी देने की स्थिति को गतिमय करते हुये मुख की विपरीत दिशा की ओर मृदग वादिका तथा करताल वादिका के हाथो की थाप को समय अन्तराल में इस प्रकार कृष्ण का नर्तन ताल और लय पर आश्रित है और पैरो की गति से लय का आभास कराया गया है। कॉगडा शैली के अधिकांश चित्रो मे स्त्री–पुरूष दोनों के ही रूप विन्यास मे यथोचित गोलाई का अकन प्रयोग है। आकृतियो के निर्माण में रेखाओं की कोमलता उनका प्रवाहमान भाव स्वत. प्रकट हो जाता है।



अध्याय - 6

उपसंहार,

- सन्दर्भ-ग्रन्थ
- पत्र-पत्रिकाएं
- चित्रफलक

उपसंहार

कॉगडा चित्रकला की सास्कृतिक पृष्ठभूमि अत्यन्त सम्पन्न है। इस चित्रकला में काव्य सगीत और चित्रकला के सुखांत समन्वय के पीछे भारतीय सस्कृति का अत्यन्त समृद्ध दर्शन है। कॉगडा कला का अद्वितीय गुण इसके चित्रो मे प्रयुक्त प्रवहमान लयात्मक रेखाओं में है। इन रेखाओं ने कॉगडा कलम को ग्येता दी है। इसको सहज ही शान्त संगीत कहा जा सकता है। ये वह कला है जो मोजार्त के संगीत की तरह दर्शकों को मुग्ध करती है इन चित्रों मे मौन संगीत का प्रसामक गुण है और मानसिक व्यथा के क्षणो में हम इन चित्रों से सान्त्वना प्राप्त कर सकते है। कॉगडा वह कला है जो मन को सुखमय प्रतीत कराती है और मन को ऊँचा उठाती है।

कॉगडा चित्रकला में लयतत्त्व का प्रयोग धरातलीय सयोजन मे मानवाकृतियों की क्रियाशीलता में, वृक्षों के अंकन में, एक समान आलंकारिक प्रभाव दिखाकर लय का सृजन किया गया है। चित्रों की रंग योजनाएं हल्के तथा गहरे धरातलों की क्रमिक व्यवस्था द्वारा क्रमागत लय को प्रस्तुत किया गया है। पीले तथा नीले रंगों की ओर लाल तथा हरे रंग की विरोधी संगतियो के संयोजन के द्वारा लयात्मकता उत्पन्न की गयी है। ठण्डे तथा गर्म रंगो और कोमल तथा तीव्र बलों वाले क्षेत्र में सन्तुलन द्वारा लय का आभास कराया गया हैं। आकृतियों के विवरणों में जो रेखाएं खींची गयी है उनका प्रवाह मन के भावानुसार दिशा में दिखाकर तथा एक ही वस्तु की रेखाएं अन्यत्र अन्य वस्तुओ की रेखाओं की अनुकूलता द्वारा अंकित करके चित्रों में रेखा प्रवाह उत्पन्न किया गया है। ओजमय रेखाओं के प्रयोग द्वारा भी लय का प्रभाव उत्पन्न किया गया है।

काँगड़ा चित्रकला में आकृतियों के द्वारा लय का बोध कराया गया है। आकृतियाँ अनेक प्रकार की चित्रित की गयी है। कलात्मक आकृतियाँ साधारण

आकृतियों से कुछ भिन्न होती है। इनमे एक प्रकार की लय होती है। कॉगडा चित्रकला मे रूप और आकारो द्वारा आवृत्तिमय पथ के सहारे दृष्टि को क्रमशः अग्रसर होने का भाव दिखाया गया है। जिससे दर्शक की दृष्टि आकारो के सहारे उसी दिशा मे अग्रसर होती जाती है और लय का बोध होता जाता है। कॉगडा चित्रकारो ने यह गति पुनरावृत्ति, क्रमिक आरोह–अवरोह द्वारा लयात्मकता उत्पन्न की है। जब किसी आकृति को एक निश्चित अन्तर के उपरान्त बार–बार अंकित किया जाता है तो उसमें क्रमिक गति का आभास होता है। जो दृष्टि को एक आकृति से दूसरी आकृति तक इस प्रकार ले जाती है कि दर्शक को अलग–अलग होने का आभास नही हो पाता और इस प्रकार आवृत्ति से लय उत्पन्न होती है। चित्र में एक समान आकृतियों के बार–बार अंकन से कॉगडा शैली के चित्रकारो ने लय तत्व को प्राप्त किया है। इससे प्रधान भाव को बल मिलता है। आकृतियों का मध्यान्तर अधिक नहीं होना चाहिए अन्यथा लयात्मक अनुभूति में कमी आ सकती है क्योकि इस अन्तर का उचित प्रमाण ही सौन्दर्य का सृजन कर सकता है। कॉगडा चित्रकारी में इस तत्व का खुल कर प्रयोग किया गया है जैसा कि कॉगडा शैली के अनेक चित्रों में अंकित वृक्षों तथा आलेखनों से स्पष्ट होता है।

यदि किसी आकृति में घुमाव देते हुये उसे निरन्तर आगे बढाया जाय तो उसमें विचित्र लयात्मकता उत्पन्न होती है। इस लहरदार गति से हमें भौतिक एवं मानसिक दोनों सुख मिलता है। दृष्टि पथ सीधा व कोणीय होने से नेत्र सुख का अनुभव नहीं कर पाते लेकिन गतिशील रेखाएँ दृष्टि को सुख देती हैं। अनेकों विद्वानों ने इसे जीवन प्रवाह कहा है। कॉगड़ा चित्रकला में आकारों के सृजन में गतिशील और लयात्मक रेखाओं का प्रयोग करके लय तत्व को प्राप्त किया गया है।

पुनरावृत्ति

काँगडा चित्रशैली में मानवाकृति को एक निश्चित अन्तर के उपरान्त अंकित करके उसमें क्रमिक गति का आभास पैदा किया गया है। इस प्रकार के चित्रों में

दर्शक की दृष्टि को एक आकृति के अलग–अलग होने का आभास नही होता और इस प्रकार आवृत्ति से लय उत्पन्न हो जाती है। चित्र में एक समान आकृतियो को बार–बार अकित करने से भी इस तत्व को प्राप्त किया जा सकता है। इससे प्रधान भाव को बल मिलता है।

विकीर्णन

कॉगडा चित्रशैली में रास लीला के चित्रो में कृष्ण को केन्द्र मे बांसुरी बजाते हुए चित्रित किया गया है और इनके चारों ओर राधा कृष्ण की आकृतियॉ अकित की गयी है। इस प्रकार यदि केन्द्रीय अथवा आकर्षण बिन्दु से सभी दिशाओ में गति को विकीर्ण करती हुयी मानवाकृतियॉ अथवा रेखाएँ अंकित की जाए तो लय उत्पन्न होती है। जैसे सूर्य की किरणो से चारों ओर आभा विकीर्ण होती है अथवा कमल की पखुडियॉ केन्द्र से निकल कर चारों ओर फैल जाती हैं उसी प्रकार सुन्दर की अनुभूति विकीर्णन द्वारा उत्पन्न हो सकती है। कॉगडा चित्रकला में इसको दो प्रकार से प्राप्त किया गया है।

(1) जब गति की अनुभूति केन्द्र से बाहर की ओर हो तो लयात्मकता वाह्योन्मुखी होती है, किन्तु जब गति की अनुभूति बाहर से केन्द्र की ओर हो तो लय की अनुभूति केन्द्रोमुखी होती है। रास लीला और कृष्ण लीला के चित्रों में इस प्रकार की लयात्मकता की अनुभूति होती है।

रंग और रेखाओं द्वारा लय की उत्पत्ति

कॉगडा शैली के चित्रों में रंगों और रेखाओं द्वारा भी लय की उत्पत्ति की गयी है। चटकीले और धुँधले रंगों के व्यवस्थित प्रयोग से चित्रकार ने एक दिशा प्रदान किया है। केवल रेखाएँ और रूप ही लय पैदा करने में समर्थ नहीं हैं उन्हें रंग की भी आवश्यकता होती है। जीवन में जिस प्रकार विश्राम, यात्रा, कार्य और शयन आदि का महत्व है उसी प्रकार लय में भी तनाव, विश्राम आदि का प्रयोग होता

है। लय के द्वारा जीवन के प्रत्येक पक्ष को गति मिलती है। लयहीन जीवन मृत्यु का द्योतक है यह प्रलय मे ही सम्भव है। यहॉ तक कि जीवन की पूर्णत· ही लय के बिना समाप्त हो जाती है। लय की पुनरावृत्ति से जीवन की गति का मार्ग तो बनता ही है और सुगमता के साथ विश्राम भी मिलता है। जीवन को यदि लय की श्रेणी मे रखा जाय तो लय और क्रम का महत्व सामने आ जाता है। संगीत हो या जीवन, चित्र हो या मूर्ति लय विहीन होने पर कृति निष्प्राण लगती है। बाह्य प्रभाव लय की गति पर अपना असर छोडता है जिन पर प्रतिकूलता और अनुकूलता का प्रभाव होता रहता है। मनुष्य अपनी इच्छाओं और भावनाओं का विकास इसी क्रम से करता है जिससे उसकी इच्छाओं का विचित्र संग्रह बन जाता है। प्रेम, घृणा, विनाश के भाव लयात्मकता के क्रम में फिर–फिर आते है और मुनष्य आन्तरिक रूप से उन्हें महसूस करते हुये भी वाह्य जगत में उनकी ऐसी सुनियोजित व्यवस्था करता है कि जिससे उसका जीवन–क्रम, सुलभ, व्यवस्थित एवं लयात्मक हो जाता है। कॉगडा चित्रकला से जब सौन्दर्य बोध की तृप्ति होने लगती है तो लय अपना काम करती है। चित्रकार, दर्शक, श्रोता सभी परस्पर लय के महत्व को समझ कर आनन्द प्राप्त करने लगते है। अपने भावों और अनुभावो को व्यक्त करने के लिये कलाकार स्वयं को संसार से खींचकर ध्यान द्वारा एकाग्र करता है। भक्त और साधक भी ईश्वर की महिमा को जानने के लिये लय में खो जाते है।

संसार के क्रम में सुबह और शाम, दिन और रात, मास और ऋतुयें आदि भी एक क्रम मे लौट कर आते है यह भी एक सम्पूर्ण गति का रूप है। मृत्यु और जीवन में यही अन्तर है कि जीवन लययुक्त होता है और मृत्यु लयहीन। क्रमबद्धता और समन्वयता लय के दूसरे नाम है। कॉगड़ा चित्रों में इन तत्वों के प्रयोग से शान्ति, सन्तोष और विश्राम का अनुभव होता है। यहाँ तक कि जिसे हम सौन्दर्य अथवा आनन्द की अनुभूति कहते हैं वह भी लय का एक रूप है। सरगम की तान, रूप का सौष्ठव, रंगों की क्रीड़ा, रेखाओं का प्रभाव, छन्दों का छन्दत्व, भाव की भंगिमा तथा

मनुष्य की मन स्थिति आदि मे लय का स्वरूप छिपा है। इनमे लय के मिलते ही आनन्द की सृष्टि हो जाती है। यहां तक कि स्वत. दर्शक चित्र के साथ चल पडता है। कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो नाचते हुये मयूर को उसकी गति के लयात्मक रूप को देखकर आनन्द से ओत–प्रोत न होगा। हमें कदाचित यह न मान लेना चाहिए कि लय का अर्थ पुनरावृत्ति है बल्कि नवीनता का सचार भी लय को जीवन्त करता है। मशीन और जीवधारी की भंगिमाओं का अन्तर इससे स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार लय जीवन प्रत्येक क्षण में इस प्रकार व्याप्त है कि जीवन का संचालन उसके साथ होता रहता है जो अर्न्तमुखी है, पर जीवन को दर्शाये रहती है।

कॉगडा चित्रकला में तान के माध्यम से, रंगों और रेखाओ के द्वारा रगो के उतार चढाव द्वारा इसको प्राप्त किया गया है। रंगों के हल्के, धुँधले, गहरे प्रयोग छोटी, बडी एव पतली लहरदार रेखाएँ इसके स्वरूप को प्रदान करती है। चित्रकारो ने रगों के माध्यम से मौगडा चित्रण में ऐसे बहुत से प्रयाग किये है जिनसे उनकी कृतिया संगीतमय हो गयी है। कॉगडा चित्रों में रंगों के उतार–चढाव के सुन्दर नमूने हैं, उनमें प्रयुक्त रेखाओ, रंगो स्वरूपों आदि को देखकर ऐसा लगता है कि चित्रकार इससे भली–भॉति परिचित था जिसके फलस्वरूप कलाकृतियाँ प्रस्तुत हो सकी। प्रसिद्ध चित्रकारों की कृतियो मे रंग के सूक्ष्मतम प्रभाव के द्वारा आरोह और अवरोह की भॉति रंग का उतार चढ़ाव इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है कि कॉगड़ा शैली के चित्रों में इससे स्वाभाविकता का लाक्षणिक रूप साकार हो उठता है। आरोह–अवरोह की प्रक्रिया जीवन की प्रक्रिया है। मनुष्य जब चलता है तो उसका एक पैर पृथ्वी पर और दूसरा गतिमय (ऊपर) होता है और जब दूसरा पैर ऊपर से पृथ्वी पर आता है तो पृथ्वी वाला पैर (ऊपर) गतिमय हो जाता है इस प्रकार गतिमयता की प्रक्रिया होती है और इसी से गतिमयता का आभास होता है। जीवन में यही क्रमहर उपक्रम में दिखाई पड़ता है। जन्म से मृत्यु तक जीवन का घटनाचक्र इसी प्रवाह में बहता है कलाकार इसकी प्रतीति मनोवेगों अनुभूतियों के द्वारा प्रत्यक्ष

और परोक्ष रूप मे उतारता चलता है यही कारण है कि उसे सवेदनशील और सहृदय कहा गया है।

सौन्दर्य दृष्टा के लिये सृष्टि के कण–कण मे सौन्दर्य की सत्ता व्याप्त है। मानव की सौन्दर्यपरक प्रवृत्ति के कारण ही कॉगडा कला का उद्‌भव हुआ और इसमे मानव की यह प्रवृत्ति नैसर्गिक है। प्रायः प्रत्येक युग मे कला का अस्तित्व मिलता है। कला में सौन्दर्य समाहित है। प्रकृति और मानव दोनों मे समान रूप से विद्यमान है। प्रकृति से मनुष्य का वैशिष्ट्य इस बात में विशेष रूप से माना जाता है कि उसी की रचना कलाकृति कहलाती है। प्रकृति जात वस्तुयें सुन्दर होते हुये भी कला कृतियॉ नहीं मानी जाती। कला मे मानवीय संवेदना और रचनाशीलता का होना अनिवार्य है। वस्तुगत प्रभाव जब तक भावात्मक न हो उसे कलानुभव की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। कलाकार की कल्पना और भावना के द्वारा ही कलाकृति का जन्म होता है। कलाकार कला के माध्यम से ही अपने गूढ़ एवं गम्भीर अन्तर्मन की अभिव्यक्ति करता है। ध्वनि, शब्द, लय, गति, क्रिया, रेखा एवं रंग आदि अभिव्यक्ति के शक्तिशाली माध्यम है जिनको कलाकार तद्‌नुकूल अपनी अभिरूचि के अनुसार अखण्ड एव सशक्त अभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त करता है। काव्य तथा इतर कलाओं की तरह चित्रकला के माध्यम से भी मानवीय संवेदनाओं का सार्वभौम हो जाना सम्भव होता है इस प्रकार कॉगडा चित्रकला मे लय तत्व का अध्ययन सिद्ध एवं प्रमाणिक होता है।

भारत के आधुनिक एवं समकालिक चित्रकारों ने लय तत्व को आधार मान कर अनेको चित्र सृजित किये है। अजन्ता चित्रकला से लेकर आज तक की चित्रकला लय तत्व से प्रभावित है। फ्रांस के चित्रकार रार्बट डिलोने ने आरफिज्म नामक एक आधुनिक चित्रकला अभियान शुरू किया था जिसमें वह चित्रफलक पर बिन्दु व पैचेच लगाकर और भॅवरदार चक्करों में परस्पर विरोधी रंगों में चित्रण शुरू किया। डिप्लोने इस ढ़ंग से अभूर्त चित्रण करने वाला फ्रांस का पहला चित्रकार था।

उसके चित्रो मे रगो का सगीत गुजन करता है। डिलोने के प्रभाव से दो अमरीकी चित्रकार मारगर सेल और सेन्टन मैक्डोनाल्ड राडर ने 'सिन्क्रानिज्म' नामक एक चित्रकला आन्दोलन शुरू किया। वे रंगों की पट्टियो या लहरों से अनुरंजन करते थे। मौलिक रगों से चित्रण प्रारम्भ करके माध्यमिक रगों की ओर क्रमशः बढते जाते थे। इस प्रकार मौलिक एव माध्यमिक रंगों के मध्यान्तर और विविध् स्तरों के उतार–चढावो को संगीत स्वरों के समान उत्पन्न करके उन्होंने कलाकृतियो को अतिशय गतिमय बना दिया।

कॉगडा चित्रकला में काव्य, चित्रकला और संगीत का समन्वय ससार भर की कलाओं में एक अद्वितीय उपलब्धि है। चीन और जापान मे भी हमें काव्य और चित्रकला के समन्वय का पता चलता है लेकिन कॉंगडा चित्रकला में तो काव्य, सगीत और चित्रकला के सुखान्त समन्वय के पीछे भारतीय संस्कृति का अत्यन्त समृद्ध दर्शन है। कॉगडा की चित्रकला का अद्वितीय गुण उसका काव्यमय चित्रण है। काव्य की पीठिका में प्रवाहमान लयात्मक रेखाओं ने कॉगडा कला को गेयता दी है। इसे सहज ही शान्त सगीत कहा गया है। यह वह कला है जो मोजार्त के संगीत की तरह दर्शकों को मंत्रमुग्ध करती है। इस चित्रों के मौन संगीत में प्रसामक गुण हैं। जिनसे कठिन क्षणों मे इनसे सान्त्वना प्राप्त कर सकते हैं। यह वह कला है जो मन को सुखकर प्रतीत होती है और आत्मा को ऊँचा उठाती है।

कॉगड़ा चित्रकला मे लय तत्व का अध्ययन मानव संस्कृति के विकास क्रम में अद्वितीय योगदान है। संगीत और चित्रकला मानव संस्कृति के ऐसे अंग है जिन्होंने समाज को समय–समय पर भक्ति, देवअराधना, आनन्द, सुख आदि की भावना से ओत–प्रोत करके मानव को सौन्दर्य का ज्ञान हुआ है। यह ज्ञान उसके विकास मे सहयोगी हुआ है जिससे उसकी संस्कृति का आधार बना है। भारत एक ऐसा देश है जिसका आधार ही धर्म है। धर्म के साथ संगीत एवं चित्रकला का उद्‌भव एवं विकासक्रम इस प्रकार जुड़ा है कि किसी वैशिष्टय से यहॉ की संस्कृति सारे विश्व में

अपना अलग स्थान रखती है। यहॉ की भक्ति भावना धर्म पर आधारित और मानव कल्याण की भावना से ओत–प्रोत है। संस्कार जहा संस्कृति का आधार है वहॉ लय तत्व का अध्ययन भी महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। यही कारण है कि मानव ने अपने व्यक्तित्त्व को सार्वभौमिक सत्ता के प्रति समर्पित कर कला के माध्यम से समाज को दे दिया। इसी प्रकार कॉगडा चित्रकला मे लय तत्व का अध्ययन सास्कृतिक विरासत की अभिव्यक्ति करता है।

कॉगडा चित्रशैली दृश्यप्रधान तथा रोमाटिक है इसमें प्रमुखता पौराणिक कथाओ एवं रीतिकालीन नायक नायिकाओं के चित्रों की है। इस प्रकार के चित्र अधिक कृषिकाय है ऑखे धनुषाकार है उगुलियॉं मे नजाकत और लय है। रंगों और तूलिका में कही भी अनावश्यक भडकीलापन नही है। कॉगडा शैली की अनुपम विशेषता उनकी रेखाओं में है जो कि दर्शक के ह्रदय में अपना स्थायी प्रभाव अंकित कर देती है यही बात उनकी तूलिका में भी दिखाई देती है। इस शैली के चित्रो में एक गहरी काव्यात्मकता भी समाहित है। इस काव्यात्मकता के कारण ये चित्र दर्शक के मन पर संगीत और नृत्य जैसा आनन्दमय प्रभाव छोड़ जाते है। कॉगडा शैली के चित्रकारों ने नारियों का चित्रण भारतीय परम्परा के अनुसार उसके आदर्श रूप को ग्रहण कर किया है।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में कांगडा चित्रशैली का विशेष महत्व इसलिये स्वीकार किया गया है क्योंकि उसके प्रभाव प्रसार से अनेक–अनेक शैलियों का जन्म हुआ। और इसी कारण इतिहास में कॉगड़ा शैली को स्वतंत्र स्थान प्राप्त हुआ। बाद में कॉगडा शैली को राजपूत और मुगल शैलियों के समकक्ष माना गया। वास्तव मे देखा जाए तो कॉगड़ा शैली, राजपूत और मुगल शैलियों के विकास विस्तार की अपेक्षा किसी भी दृष्टि से न्यून नहीं है। विषय की दृष्टि से कॉगडा शैली में धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, श्रृगारिक एवं सामाजिक आदि अनेक विषयों के सैकड़ों चित्र बने। सौष्ठव, मर्यादा, लोकप्रियता और संवैधानिक दृष्टि से भी कॉंगड़ा शैली के

चित्रो का विशिष्ट महत्व माना गया है। कॉंगडा शैली के चित्रो मे आकारो की लयात्मकता, वृक्षो के अंकन मे एक समान अलंकारिक प्रभाव दिखाकर लय को उत्पन्न करना, चित्रो की रग योजनायें हल्के तथा गहरे धरातलो की क्रमिक व्यवस्था लय को प्रस्तुत करती है। ठण्डे तथा गर्म रंग तथा कोमल तथा तीव्र तलो वाला क्षेत्र लगभग नये तुले क्षेत्र मे भरे होने के कारण सन्तुलित होता है। आकृतियो के सृजन में जो रेखाए खीची गयी है उनका प्रवाह मन के भावानुसार दिशा में बनाया गया है तथा एक ही वस्तु की रेखाएँ अन्यत्र अन्य वस्तुओ की रेखाएँ अनुकूलता मे अंकित होती है। इस प्रकार कॉंगडा शैली के चित्रो मे रेखा प्रवाह मे एक सामंजस्य उत्पन्न होता है जहा कही ओजमय रेखाओं का प्रयोग हुआ है वहां लय के प्रवाह को अधिक सशक्त प्रयुक्त किया गया है। लय का कला के विकास क्रम मे इतना योगदान है कि उससे कलात्मक धरोहर का रूप मिल जाता है। लय मानव संस्कृति का ऐसा अंग है जिसमें देव अराधना का आधार बना है। कॉंगडा चित्रकला मे लय तत्व का अध्ययन मानव कल्याण और देश के हित के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध एव प्रमाणिक होता है।

कॉंगडा चित्रकला पर्वतीय क्षेत्र में स्थित यह अकेला केन्द्र एशिया की खूबसूरत लयात्मक ढलानो में से एक है। इसके चारों ओर की सुरम्य हरियाली शांत निर्जन परिवेश, स्वास्थप्रद जलवायु और लयात्मक ग्रेनाइट पत्थर ग्रीष्म व शरद ऋतु तक ये ढलाने हरी–भरी घास से लहराते परिदृश्य पक्षी, नदी, तालाब, आकृति, रंगों, रेखाओ में लयात्मकता है। यहॉं का जीवन लय पूर्ण है। यहॉं के चित्रकारों के स्वभाव में लयात्मकता है। प्रकृतिक दृश्य तथा सूर्यास्त एक नयनाभिराम दृश्य अपने जीवन के कैनवास पर उतारने के लिए सैलानी पर्वतीय स्थलो को लय पूर्ण दिखाई देता है। कॉंगडा चित्रकला में लय तत्व का अध्ययन हमारे देश में महत्वपूर्ण होगी।

आधुनिक भारतीय चित्रकला में कॉंगड़ा शैली लयात्मक रेखांकन, रंगों की चमक तथा आंलकारिक विवरणों की सूक्ष्मता का प्रभात आरम्भ से दिखाई देता है क्योंकि कॉंगड़ा शैली के चित्रकारों का आधार अजन्ता राजस्थानी और कॉंगड़ा शैली

में प्रयुक्त रग और लयात्मक रेखाओ का रहा है। अजन्ता कला के समान कॉंगडा कला मे भी विशेष रूप से लयात्मक सीमा रेखा को चित्र का आधार माना है। भारतीय चित्र कला के आधुनिक युग पर कॉंगडा शैली का प्रभाव प्रमुखता बंगाल स्कूल के चित्रों पर दिखाई देता है। बंगाल स्कूल के स्थापक, अवीन्द्र नाथ टैगोर, नन्द लाल बोस और असीत कुमार हल्दार क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार की कला पर लय तत्त्व का प्रभाव भावात्मक ओर दृष्टिगत दोनो रूपो मे मिलता है।

समसामायिक चित्रकारों का एकवर्ग अपने चित्रो मे लयात्मकता को भावाभिव्यक्त के लिए विशेष रूप से लय तत्त्व का प्रयोग किया है। ऐसे चित्रकारो में प्रमुख रूप से प्रोफेसर रामचन्द्र शुक्ल, दिकर कौशिक, यामिनी राय, क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार का नाम उल्लेखनीय है। इन चित्रों की आकृतियो की भगिमाओ मे व्यंजनावृत्ति की नवीन प्रभवोत्यापकता है और इनके चित्रो मे लयात्मकता है। इस युग के कलाकारों द्वारा समकालीन भारतीय चित्रकला का जिस रूप मे विकास हो रहा है उसमें लय तत्त्व की प्रमुख भूमिका है। उनकी कृतियों मे आज की परिवर्तित एवं व्यापक परिस्थितियों का सामंजस्य दर्शातें है। कला के क्षेत्र में लयात्मकता के द्वारा जो नये अनुसधान एव नई गवेषणाएँ हो रही हैं, समकालीन भारतीय चित्रकार उनकी ओर उन्मुख है। समसामायिक चित्रकारों की नई पीढी के चित्रकार के रूप से उल्लेखनीय है। जिन्होंने कॉंगडा चित्रकला में प्रयुक्त लयात्मकता को अध्ययन करके नई सम्भावनाएँ विकसित करके प्रयोगवादी चित्र प्रस्तुत किये है। सुधीर रजन खास्तगीर ने अपने संगीत, कविता और लय के द्वारा अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने का सशक्त प्रयत्न किया है। खास्तगीर ने लय तत्त्व को आधार मानकर, एक निजी शैली को प्रतिष्ठित किया है। बाउलो इसका उदाहरण है। इनकी उत्कृष्टि कृतियों मे सुन्दर मुख मुद्रा और लयात्मकता दिखाई पडती है। प्रकृति मिलन शीर्षक चित्र में वायु के तंरगों से आलिंगन–बध प्रकृति का सुन्दर लयात्मक चित्रण हुआ है। चित्रों मे लयात्मक तथा सौष्ठव लयात्मकता की अनोखी अभिव्यक्ति है।

आधुनिक शैली के चित्रों में लय तत्त्व के आधार पद्म श्री रामगोपाल विजय

वर्गीय ने अपनी निजी नई शैली विकसित की है। आधुनिक शैली के अनेको भारतीय चित्रकारो ने कॉंगडा शैली मे प्रयुक्त लय तत्त्व मानकर आकार्षण और प्रभावशाली चित्रों का सृजन किया है जैसे जे०पी०सिंहल, मुलगॉवकर और माधव सावलेकर के चित्रो मे देखा जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बंगाल शैली के प्रशिक्षित एव दीक्षित चित्रकार नितान्त वैयाक्तिक निष्पत्तियों के माध्यम से आधुनिक कलाकारो मे अपना निश्चित स्थान बना चुके हैं। वे एक सफल चित्रकार और उतने ही विशिष्ट कला समीक्षक भी है। उन्होने अपनी रचना प्रक्रिया के बारे मे कहा है कि मै अधिकतम् सूक्ष्म अमर्त चित्र बनाता हूँ और इसे ही इस युग कला का मील का पत्थर मानते हैं। लेकिन वर्तमान मे समासीवादी कला आन्दोलन के स्थापक चित्रकार रहे है। फिर भी काँगडा चित्र शैली में प्रयुक्त लय तत्त्व के आधार पर अनेको बंगाल शैली के चित्र तैयार किये हैं जिनकी रेखाओं और रगो की लयात्मकता चित्र के भाव को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है।

कुल मिलाकर यह सिद्ध एवं प्रामाणित किया जा सकता है कि आधुनिक और समकालीन कला का विकास लय तत्त्व के बिना सम्भव नहीं है क्योंकि लय समग्र कलाओ की नीव है। लय के बिना गति का भाव प्रकट नही हो सकता है और नियमित गति से ही सौन्दर्य उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार कॉंगडा चित्रशैली मे लय तत्त्व का अध्ययन आधुनिक एवं समकालीन चित्रकारों को प्रेरणादायक सिद्ध होता है और नये सृजन की सम्भावनाओं को व्यक्त करता है। कला समीक्षक आनन्द कुमार स्वामी का कथन है कि लय तत्त्व का अध्ययन का प्रभाव चीनी चित्रकला में भी हुआ है।

इस प्रकार यह प्रामाणित हो जाता है कि काँगड़ा चित्रकला में प्रयुक्त लय तत्त्व का अध्ययन, समाज के कल्याण और देश के हित के लिए आवश्यक है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

आचार्य बृहस्पति	सगीत चितामणि, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1966, प्र०सं०।
	भारत का सगीत सिद्धान्त।
अहोबल	संगीत पारिजात, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1956
ओंकारनाथ ठाकुर	· संगीतांजलि, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1954, प्र०स०।
अरूण कुमार सेन	भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, मध्य प्रदेश हिन्दी आकदमी, भोपाल, म०प्र०।
घनश्याम दास	· भारतीय संगीत विज्ञान, श्यामसुन्दर ठेकेदार, पश्चिमी भट्टा, कटनी, म०प्र०।
दामोदर	सगीत दर्पण (हिन्दी भाषा टीका सहित) अनुं० प० विश्वम्भर नाथ भट्ट।
भगवत शरण शर्मा	: हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र,
लोचन पण्डित	: राग तरंगिनी,
उमेश जोशी	· भारतीय सगीत का इतिहास, मानसरोवर प्रकाशन महल, फिरोजाबाद (उ०प्र०) 1957, प्र०सं०।
ललित किशोर सिंह	: ध्वनि और संगीत, भारतीय ज्ञान पीठ, प्रकाशन नई दिल्ली, 1997।
लालमणि मिश्र	· भारतीय संगीत, वाद्य, भारतीय ज्ञान पीठ, 1973 प्र०सं०।
विष्णु नारायण	: भातखण्डे, संगीत शास्त्र, प्रथम/द्वितीय भाग।
भातखण्डे	: संगीत कार्यालय, हाथरस, 1951 प्र०सं०।
विनायक नारायण पट	: राग–विज्ञान, भाग–1, 2

डा० शरदचन्द्र श्रीधर संगीत बोध, मध्य–प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1980, द्वि०स०।

डॉ० अवध उपाध्याय चित्रकला, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 2005 वि०।

अवनीन्द्र नाथ ठाकुर भारत शिल्प के षडंग, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1958

अविनाश बहादुर वर्मा . भारतीय चित्रकला का इतिहास प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 1968

अशोक मिश्र चार चित्रकार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1975

अशोक गिरिराज किशोर कला समीक्षा . देवऋषि प्रकाशन, अलीगढ, 1914

असित कुमार हाल्दार भारतीय चित्रकला, चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, 1959

आस्कर वाइल्ड : सौन्दर्य की रेखाएँ, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1957.

डॉ० उमा मिश्र : काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध, पुस्तक सदन, दिल्ली, 1962

कृष्णदत्त वाजपेयी : भारतीय कला का इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1975.

: भारतीय वास्तु कला का इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ 1975.

किशोरी लाल वैथ · पहाडी चित्रकला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1969.

डॉ० कुमार विमल : कला विवेचन, भारतीय भवन, पटना, 1968

: सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1967

कोमल कोठारी : साहित्य, संगीत और कला, जोधपुर, 1060.

चिरंजीलाल झा · चित्रकला के छ अंग, लक्ष्मी कला कुटीर, गाजियाबाद 1952

· कला के मूल तत्व, लक्ष्मी कला कुटीर, गाजियाबाद, 1972

· भारतीय चित्रकला का विकास, लक्ष्मी कला कुटीर, गाजियाबाद, 1961

जयसिह नीरज राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966

द्वारका प्रसाद धुलिया चित्रदर्शन, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1955

नन्द लाल बोस शिल्प कथा, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1952

डॉ० नगेन्द्र · भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1978

डॉ० निर्मला जैन : रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1967

प्रोफेसर राम चन्द्र शुक्ल . चित्रकला का रसास्वादन, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी,

: कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, उ०प्र० सूचना विभाग, लखनऊ, 1958.

: कला दर्शन, करोना आर्ट पब्लिशर्स, मेरठ, 1964.

: आधुनिक कला समीक्षावाद, कला प्रकाशन, 17 नया बैरहना इलाहाबाद, 1987.

: रेखावली, कला प्रकाशन, इलाहाबाद उत्तर प्रदेश, 1954.

डॉ० राधाकमल मुकर्जी भारत की सस्कृति और कला (अनु०) इलाहाबाद, 1964

डॉ० रामनाथ · मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एव उनका विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1973

रमेश कुन्तल मेघ . अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा, दि मैकमिलन कपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1977 प्र०स०।

· कलाशास्त्र और मध्यकालीन भामिकी जातियॉ, 1975

शाङ्गदेव · सगीत रत्नाकर भाग– १, संगीत कार्यालय हाथरस, पत्र–पत्रिकाये।

कृष्ण दास · भारत की चित्रकला, भारतीय भन्डार, इलाहाबाद, 1974.

रणवीर सेक्सेना : कला सौन्दर्य और जीवन, रेखा प्रकाशन कार्यालय, देहरादून, 1967

डॉ० रामगोपाल विजय वर्गीय . राजस्थानी चित्रकला, विजयवर्गीय कला मण्डप, जयपुर 1953

रवि सरवालकर . आधुनिक चित्रकला, राजस्थानी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।

डॉ० रघुनन्दन प्रसाद तिवारी : भारतीय चित्रकला और उसके मूलतत्व, भारतीय पब्लिशिग हाउस, वाराणसी, 1973, प्र०सं०।

राम प्रताप त्रिपाठी : कला अंक, सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1972

डॉ० राम कीर्ति शुक्ल : सौन्दर्य का तात्पर्य, उ०प्र० हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ।

डॉ० राम कीर्ति शुक्ल : सौन्दर्य का तात्पर्य, उ०प्र० हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ।

डॉ० राजेन्द्र प्रताप सिंह . सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परम्परा, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962, प्र०सं०।

डॉ० सत्येन्द्र कला, कल्पना और साहित्य, आशा, दि०स०।

शची रानी गुर्टू . कला दर्शन, साहनी प्रकाशन, दिल्ली, 1953

सुरेन्द्र नाथ दास गुप्ता : सौन्दर्य तत्व, भारतीय भण्डार, प्रयाग।

वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1966.

: कला और संस्कृति, इलाहाबाद, 1952

वाचस्पति गैरोला · भारतीय चित्रकला, मिश्र प्रकाशन प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1963 प्र०स०।

: भारतीय सस्कृति और कला, उ०प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1950

हंस कुमार तिवारी · कला, मान सरोवर प्रकाशन गया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कला विनोद, बम्बई, 1950.

डॉ० राम कुमार विश्वकर्मा . भारतीय चित्रांकन, बिशन लाल भार्गव एण्ड संस, ११२१ कटरा, इलाहाबाद।

डॉ० राम कुमार विश्वकर्मा : रूपारेख्य, भार्गव बुक हाउस, इलाहाबाद।

: भारतीय चित्रकला में संगीत तत्त्व, प्रकाश विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार।

हजारी प्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कला विनोद, बम्बई, 1950.

पत्र-पत्रिकायें

हिन्दुस्तानी त्रैमासिक – शोध पत्रिका, भाग–33, अक–3 हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

कला त्रैमासिक – राज्य ललित कला अकादमी, उ०प्र० लखनऊ।

कला निधि – त्रैमासिक, भारत कलाभवन, वाराणसी।

ललित कला समकालीन (हिन्दी) – ललित कला अकादमी, नई दिल्ली।

कला अक – सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

BIBLIOGRAPHY

Archer, W.G. - Central Indian painting, with an Introduction and notes. Faber & Faber, 1958.

Garhwal Painting with an Introduction and notes, London. 1954.

Brunel Francis - Splendour of Indian minature, Fublication clovion, Delhi.

Bedekav, V.M. - Stylistic approch to Indian Niniatures, M.S. University of Baroda, 1929.

Barritt Dougals and Gray, Basil - Painting of India (Geneva) 1963.

Coomaraswmy, A.K. - Catalogue of Indian collections in the Museum of Fine arts Bostan, Part-6.

Mughal Paintins- 1930.

Chandra, P. - Bundi Paintings: New Delhi. Lalit Kala Academi.

French, J.C. - Art in chamba; Art and L.XXV, 1851. Himalayan Art; London, Oxford University Press, 1921.

Grad, Mann Ervin Gray, Basll - Indian Miniatures; New yark, 1930.

Horace anoted by Jean, H---- The sister Arts.

Jamila, Brijbhushan - The world of Indian Miniatures. Kodansha, International Ltd. Tokeyo, 1979.

Klaus, Ebling - Ragamala Painting; Published by Ravi kumar, Kumar Gallary, Sunder, New Delhi, 1973.

Khandalval, Karl - The development of stylein Indian Painting

Macmillon, New Delhi, 1969.

Pahari Miniature Painting, Bombay New Book Company, 1958.

Kala, S.C. - Indian Miniatures in the Allahabad Museum, Allahabad, 1961.

Kanoria, G.K. - An Early dated Rajasthani Ragamala, Journal of the Indian society of Oriental Art, 1952; Valume 19th. Cal - 1952.

Knobler - Visual Diologue.

Kapoor, Geeta - Contemporary Indian Artists, 1978. Vikas Publishing House, New Delhi.

Krishna Chaitanya - History of Indian Painting Manuscript, Mughal and Deccan Tradition, Abhinav Publication, New Delhi, 1979.

Meht, N.C. - The Golden Fluite, Indian Painting and Feetry, Lalit Kala Academy India.

Studies in Indian Painting, Tarapurwala, Bombay, 1926.

Mira Seth - Wall Paintings of Himalayas, Publication, Devision, Ministry of Information and Broad casting Government of India, 1976.

Philip, S. Rawson - Indian Painting Pierre Jisne Editeur, 1961.

Randhawa, M.S. - Indian Miniature Painting, Roli Books, International, New Delhi, 1981.

Kangava Ragamala Painting National Museum, New Delhi, 1971.

Randhawa, M.S. and Bhambon, S.D. - Kishangarh Painting, Vakils, Feffer and Simons (Lit), Bombay, 1980.

Sharma, J.P. - Indian Minature Paintings Exhibition, compiled from the collection of the National Museum of New Delhi, 1974.

Singh, Chandra Mani - Centres of Pahari Paintings, Abhinav Publication, New Delhi, 1982.

Siva Ramamurti, C. - Indian Painting, National Book Trust of India, New Delhi, 1970.

The Art of India, London.

Shukla, D.N. - Six Fine Arts, Vastumanav Prakashanshanla, Lucknow, 1967.

Smith, Vincent, A. - History of Fine Arts In India and Crylon; Oxford, 1930.

